प्रस्तावना ।

श्रीमान् बाबू सूरज भानजी वकील नकुड़ निवासी ने इस पुस्तक को रच कर एक बड़ी कमी का पूरा करने का प्रयत्न किया है। जैनधर्म के कई एक कठिन और गम्भीर विषयों को बहुत ही सुलभता से समझाया है जैन अजैन सभी को लाभ कारी होगा इसी कारण से

❋ जैन हाई स्कूल पानीपत ❋

की मैनेजिंग कमेटी ने इस पुस्तक को स्कूल की धर्म शिक्षा के कोर्स में नियत कर दिया है।

बहुत से महाशय जैन धर्म के असूलों को यथार्थ रीति से न समझ कर उन के महत्व को न जानते हुए मन माने आक्षेप किया करते है। उन को उचित है कि सिद्धान्त के कठिन विषयों को विद्वानों से समझें या उनकी सम्मतिसे सुलभ ग्रन्थों को बिना राग द्वेषके पढ़ कर लाभ उठावें जो लोग इस गरज से कि कोई दोष निकालें किसी भी धर्म के ग्रन्थको पढ़तेहैं वे कभी भी उसके महत्वको नहीं समझ सक्ते उचित यह कि निष्पक्ष होकर पढ़ें और पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को समझ कर लाभ उठावें। इन बातों को ध्यान में रखकरही यह पुस्तक तैयार हुई है ॥

रूपचंद गार्गीय पानीपत ।

मेरी भावना ।

[राष्ट्रीय नित्यपाठ ।]

(१)

जिसने रागद्वेषकामादिक । जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्गका । निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा । या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह । चित्त उसीमें लीन रहो ॥

(२)

विषयोंकी आशा नहिं जिनके । साम्य-भाव धन रखते हैं
निज-परके हित-साधनमें जो । निशदिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थत्यागकीकठिनतपस्या । विना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के । दुखसमूहको हरते हैं ॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका, । ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या में यह । चित्त सदा अनुरक्त रहे ।

नहीं सताऊं किसी जीवको, । झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-व[1]नितापरनलुभाऊं, । संतोपामृत पिया करूँ ॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूं, । नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरों की बढ़तो को । कभी न ईर्षा-भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी, । सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँतक इस जीवन में । औरोंका उपकार करूँ ॥

(५)

मैत्री भाव जगत में मेरा । सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे । उरसे करुणास्रोत बहे ।
दुर्जन-क्रूर--कुमार्गरतों पर । क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूंमें उनपर, । ऐसी परिणति हो जावे ॥

(६)

गुणीजनोंको देख हृदय में । मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा । करके यह मन सुख पावे ।
होऊं नहीं कृतघ्न कभीमें, । द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणकाभाव रहेंनित, । दृष्टि न दोपों पर जावे ॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, । लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या । मृत्यु आज ही आजावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय । या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा । कभी न पद डिगने पावें ॥

---

१ स्त्रियाँ 'वनिता' की जगह 'परनर' पढ़ें ।

(८)

होकर सुखमें मग्न न फूले । दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक । अटवीसे नहिं भय खावे ।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, । यह मन, दृढतर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में । सहनशीलता दिखलावे ॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगतके, । कोई कभी न घबरावे
बैर-पाप-अभिमान छोड़जग । नित्य नये मंगल गावे ।
घर घर चर्चा रहे धर्मकी, । दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नतकर अपना । मनुज-जन्मफल सब पावें ॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, । वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ हो कर राजा भी । न्याय प्रजाका किया करे ।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले । प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, । फैल सर्वहित किया करे ।

(११)

फैले प्रेम परस्पर जग में, । मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोरशब्दनहिं। कोई मुखसे कहा करे ।
बनकरसब 'युग-वीर' हृदयसे । देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे । सब दुख-संकट सहा करें ॥

* विषय सूची *

-:o:-

ॐ

जैनधर्म प्रवेशिका

प्रथम भाग

पहिला अध्याय।

॥ मंगलाचरण ॥

तीन लोक में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव स्वरूप शिवकार, नमहूं त्रियोग सम्हारिके ॥

जीव और अजीव यह दो ही प्रकार के पदार्थ संसार में हैं इनसे भिन्न और कुछ भी नहीं है, मनुष्य और हाथी घोड़ा बैल गाय भेड़ बकरी चील कबूतर सांप बिच्छू कीड़ा मकौड़ा आदि जिनमें कमती बढ़ती कुछ भी ज्ञान है वह सब जीव हैं और ईंट पत्थर घड़ा मटका कपड़ा जूता कुर्सी मेज़ खाट किताब कलम दावात कागज़ आदि जिनमें कुछ भी ज्ञान नहीं है वह अजीव हैं, जीव भी जब मर जाता है अर्थात् शरीर छोड़ जाता है तो मरे हुवे शरीर को कुछ

भी ज्ञान नहीं रहता है, मरे हुवे शरीर में आंख हैं पर देख नहीं सकता, कान हैं पर सुन नहीं सकता, खाल है पर ठंडा तत्ता कुछ भी जान नहीं सकता, यह सब ज्ञान तो जीव को ही होता था जो निकल गया है और ईंट पत्थर के समान यह मुर्दा शरीर रह गया है, इस प्रकार जीवों का शरीर भी अजीव ही है, जीव तो वह ही है जो मरते समय निकल जाता है और निकलता हुवा भी नहीं दिखाई देता है, इस ही कारण अमूर्त है, जो न तो आंखों से दिखाई दे न नाक से सूंघा जा सके, न जीभ से चाखा जा सके और न शरीर से छूआ जा सके न टक्कर खाने से किसी प्रकार की आवाज़ करे वह ही अमूर्त कहलाता है, ईंट पत्थर आदि वस्तु जो मूर्त हैं वह अजीव हैं और पुद्गल कहलाती हैं, मूर्तमान पुद्गल पदार्थों के सिवाय अन्य प्रकार के अजीव भी ऐसे हैं जो अमूर्त हैं और दिखाई नहीं देते हैं उनका वर्णन इस समय नहीं किया जाता है।

संसारी जीव सब शरीर धारी ही हैं और प्रायः आंख नाक कान आदि इन्द्रियों से ही पदार्थों को जानते हैं इन्द्रियां पांच हैं (१) स्पर्श अर्थात् शरीर की खाल से छूकर ठंडा तत्ता और चिकना खुरदरा आदि जानना (२) रसना अर्थात् जीभ

से चख कर खट्टा मीठा आदि स्वाद जानना (३) घ्राण अर्थात् नाक से सूंघ कर सुगंध दुर्गंध मालूम करना (४) चक्षु अर्थात् आंख से रंग रूप देखना (५) कर्ण अर्थात् कान से हल्की भारी आवाज़ सुनना, इस प्रकार इन पांचों इन्द्रियों से मूर्तीक पुद्गल पदार्थों की अनेक बातें जानी जाती हैं, मनुष्य और गाय बैल आदि जीवों में पांचों ही इन्द्रियां होती हैं परन्तु ऐसे भी जीव हैं जिनके कमती २ इन्द्रियां होती हैं, जैसा कि वृक्षों में भी जान है, वह भी पैदा होते हैं और मरते हैं इन वृक्षों में अर्थात् सर्व प्रकार की वनस्पतियों में एक स्पर्श इन्द्रिय ही होती है, कोई २ कीड़े ऐसे हैं जिनमें जिह्वा इन्द्रिय बढ़कर दो इन्द्रिय होती हैं, कोई जीव ऐसे हैं जिनमें नाक भी होती है अर्थात् तीन इन्द्रिय होती हैं, कई जीवों में चक्षु इन्द्रिय भी होकर चार इन्द्रिय होती हैं, जिनके कान भी हैं वे पंचेइंद्रिय हैं, वृक्षादि एकेंद्रिय जीव अपनी इच्छा से इधर उधर चल फिर नहीं सक्ते हैं इस ही वास्ते स्थावर कहलाते हैं बाकी सब जीव चल फिर सक्ते हैं और त्रस कहलाते हैं।

मन इन पांचों इंद्रियों से अलग है उसको अनिन्द्रिय भी कहते हैं, यह मन एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, और चौइंद्रिय जीवों के तो होता ही नहीं है, पंचेंद्रिय जीवों के ही होता है, उनमें भी किसी २ के नहीं होता है, जिनके मन

होता है वह संज्ञी वा सैनी कहलाते हैं और जिनके नहीं होता है वे असंज्ञी वा असैनी कहाते हैं, इस सारे संसार के तीन भाग हैं और तीन लोक कहलाते हैं, यह हमारी पृथ्वी मध्य लोक है इस से नीचे नरक और ऊपर स्वर्ग है, जो भारी पाप करते हैं वह नरक जाते हैं और महादुख पाते हैं, अधिक पुन्यवान स्वर्ग जाते हैं, देव कहलाते हैं और संसार का सुख भोगते हैं, नरक के नारकी, स्वर्गों के देव और मनुष्यों के सिवाय पशु पक्षी कीड़े मकौड़े और वनस्पति आदि जितने भी जीव हैं वह सब तिर्यंच कहलाते हैं, देव नारकी और मनुष्य सब पंचेन्द्रिय और संज्ञी अर्थात् मन वाले ही होते हैं, तिर्यंचों में कोई एकेंद्रिय, कोई दो इंद्रिय कोई तेइंद्रिय कोई चौइंद्रिय और कोइ पंचेंद्रिय होते हैं और पंचेंद्रियों में भी कोई संज्ञी और कोई असंज्ञी होते हैं, मनुष्यों का जन्म पिता के द्वारा माता के पेट में गर्भ रहने से ही होता है इस ही वास्ते गर्भज कहलाते हैं, तिर्यंचों में भी जो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं वह भी गर्भज ही हैं बाकी सब तिर्यंच सम्मूर्छन हैं जिनका जन्म माता के पेट से नहीं होता है किन्तु जिनका शरीर अपने योग्य सामग्री मिलने से ही बन जाता है, जैसे सिर की जूं, खाट के खटमल और वनस्पति आदि, देव और नारकियों का जन्म नतो गर्भ से ही होता है और न सम्मूर्छन रीति से ही, किन्तु एक निराली ही रीति से होता है

जो उपपाद जन्म कहलाता है, मनुष्य और तिर्यंचों का शरीर औदारिक कहलाता है, परन्तु देव नारकियों का शरीर हवा के समान एक निराली ही रीति का होता है जो वैक्रियक कहलाता है, सब ही असंज्ञी जीव नपुंसक होते हैं अर्थात नतो पुरुष ही होते हैं और न स्त्री ही, नारकी भी सब नपुंसक ही होते हैं, देवों में स्त्री और पुरुष दोनों होते हैं नपुंसक कोई नहीं होता, मनुष्य और पंचेंद्रिय संज्ञी तिर्यंच स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों ही प्रकार के होते हैं, इस प्रकार संसारी जीव संसार में तरह २ की अवस्था धारण करते रहते हैं, एक अवस्था से मर कर दूसरी अवस्था में जन्म लेते रहते हैं ।

॥ दूसरा अध्याय ॥

जीव और अजीव यह दोनों ही प्रकार के पदार्थ अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक रहेंगे इनको नतो किसी ने बनाया है और न कोई नाश ही कर सक्ता है, रंचमात्र भी कोई पदार्थ कमती वढ़ती नहा हो सक्ता है, जितने जीव हैं उतने ही सदा से हैं और उतने ही सदा तक रहेंगे, ज़रा भी कमती वढ़ती नहीं हो सक्ते हैं, इस ही प्रकार अजीव पदार्थ भी अनादि काल से जितने हैं अनन्त तक उतने ही रहेंगे उनमें भी एक कण मात्र भी कमती वढ़ती नहीं हो सक्ता है, इसके अलावा नतो जीव वदल कर अजीव हो

सक्ता है, और न अजीव बदल कर जीव हो सक्ता है, जो जीव है वह सदा जीव ही रहेगा और जो अजीव है वह अजीव ही रहेगा, किन्तु अवस्था सब की अवश्य पलटती रहती है, इस अवस्था के बदलने को पर्याय बदलना कहते हैं, जैसे लकड़ी जलाने से कुछ तो राख बन जाती है कुछ भाप बन कर हवा में मिल जाती है और कुछ धूवां हो कर ऊपर चढ़ जाती है, इस प्रकार जलाने से लकड़ी का एक कण भी नाश नहीं होता है, वस्तु तो उतनी की उतनी ही रहती है परन्तु पर्याय बदल जाती है, इसही प्रकार धूप वा आग की गर्मी से पानी भी भाप बनकर हवा में मिल जाता है परन्तु एक कणमात्र भी नाश नहीं होता है इसही प्रकार सब ही वस्तु पर्याय बदलती रहती हैं, न घटती हैं न बढ़ती हैं ज्यों की त्यों बनी रहती हैं, पानी, हवा और मिट्टी से परवरिश पाकर तरह २ की बनस्पति बढ़ती हैं और उन में फल फूल लगते हैं, अर्थात् पानी हवा और मिट्टी ही लाखों प्रकार की बनस्पति का शरीर धारण कर लेती है और तरह २ के फल फूल और पत्ते रूप हो जाती है, फिर जब इनही बनस्पतियों को मनुष्य वा पशु खा लेते हैं तो यह ही बनस्पति उन पशु पक्षियों वा मनुष्यों के शरीर रूप हो जाती हैं, हाड़ मांस और आंख नाक आदि बन जाती हैं, फिर जब जीव मर जाता है तो उसका शरीर कुछ समय बाद मिट्टी

हो जाता है, कुछ हवा हो कर हवा में मिल जाता है और कुछ भाप बन कर फिर पानी बन जाता है, इस ही प्रकार का चक्र सब ही प्रकार की वस्तुवों में लगा हुवा है कोई पर्याय जल्द बदलती है और कोई देर में परन्तु प्रत्येक वस्तु अपनी पर्याय बदलती जरूर है, इस ही प्रकार जीव भी कभी मनुष्य बनता है, कभी घोड़ा बैल आदि पशु होता है कभी चील कबूतर तोता मैना आदि पक्षी बनता है, कभी मच्छर खटमल आदि कीड़ा मकौड़ा बन जाता है कभी नरक में जाता है और कभी स्वर्ग में, इस ही प्रकार अनादिकाल से तरह २ की पर्याय बदलता चला आरहा है, इस प्रकार जीव और अजीव दोनों ही प्रकार के पदार्थ अनादि काल से तरह २ की पर्याय बदलते चले आरहे हैं, इस ही को संसार कहते हैं, इस संसार को न किसी ने बनाया है और न कोई नाश कर सक्ता है यह तो वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार तरह २ की पर्याय बदलता हुवा अनादिकाल से यूंही चला आरहा है।

संसार की सब वस्तु अपना अलग २ स्वभाव रखती हैं परन्तु दूसरी वस्तुओं के मिलने से उनके स्वभाव में फ़रक़ आजाता है इस ही को विभाव कहते हैं, पानी का स्वभाव शीतल है परन्तु उस पर सूरज की धूप के पड़ने से वा आग की गर्मी के पहुंचने से वह पानी ऐसा गर्म हो जाता है कि छूआ भी नहीं जा सक्ता है, शरीर पर पड़जाय तो फफोले

डाल देता है, पानी अपने स्वभाव से ऐसा स्वच्छ और साफ़ है कि उसमें पड़ी हुई सब चीज़ साफ़ नज़र आती है परन्तु मिट्टी वा अन्य किसी वस्तु के मिलने से वह ही पानी बिल्कुल मैला और गदला हो जाता है, इसही प्रकार जीव का भी असली स्वभाव ज्ञान और आनन्द है, जीवों में संसार की सब ही वस्तुओं और उनके सब ही प्रकार के गुण और पर्यायों को पूर्ण रूप से जानने की शक्ति है, पूर्ण शान्ति के साथ अपने ज्ञानानन्द में मग्न रहना ही जीव का असली स्वभाव है, जीवों को अपने इस परम ज्ञान के वास्ते नतो आंख नाक आदि इन्द्रियों की ही ज़रूरत है और न शरीर की, न आंख को ऐनक लगाने की और न दूर की चीज़ के देखने के वास्ते दूरबीन की, वह तो अपनी जीवात्मा की शक्ति से ही सब कुछ जान सक्ते हैं और बिना किसी प्रकार की वस्तु के अकेले अपने ही आत्म स्वरूप में मग्न रह सक्ते हैं परन्तु अनादि काल से संसार के सब ही जीव शरीर रूपी क़ैदखाने में क़ैद रहते चले आरहे हैं कभी कोई शरीर धारण करते हैं और कभी कोई, परन्तु शरीर के बिदून कभी नहीं रहते हैं, अनादि काल से ही इनका ज्ञान गुण गदला हो रहा है और बिना आंख नाक आदि इन्द्रियों के कुछ भी नहीं सूझता है, जीव का असली स्वभाव बिगड़ कर उसमें विभाव भाव पैदा हो रहा है जिससे

क्रोध मान माया और लोभ आदि अनेक प्रकार की तरंगें अनेक प्रकार की भड़क और अनेक प्रकार की इच्छायें इनके अन्दर उठती रहती हैं जिससे यह जीव शान्ति रूपी अपना असली आनन्द खो कर महा व्याकुल और दुखी होते हुवे संसार में भटकते फिर रहे हैं, जिस प्रकार अनादि काल से बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज पैदा होता चला आरहा है इसही प्रकार मान माया लोभ क्रोध आदि कषायों के करने से जीव में भी विभाव पैदा होता है और उस विभाव से फिर मान माया लोभ क्रोध आदि कषायें उत्पन्न होती हैं, यह ही सिलसिला अनादिकाल से चला आरहा है, इस ही चक्कर में पड़े हुवे संसारी जीव अपने असली स्वभाव को खोकर महा दुख उठा रहे हैं, मान अर्थात् अपने को बड़ा समझना, दूसरों को अपने से घटिया समझ कर घमंड करना अभिमान करना मद करना, दूसरों से ऊंचा बनने की दूसरों को अपने से नीचा बनाने की इच्छा करना, मेरी बात में बट्टा न लग जाय, इज्ज़त में फ़रक़ न आजाय, मैं किसी बात में घटिया न समझा जाऊं और नीचा न देखने पाऊं. यह उधेड़ बुन सब ही संसारी जीवों को लगी रहती है, माया अर्थात् तरह २ की चालाकी करने की तरह २ चाल चलने की धोखा फ़रेब देने की, दूसरों को बेवक़ूफ़ बनाकर अपना मतलब निकालने की तरंगें भी सब ही को उठा करती हैं मानों यह

भी एक प्रकार की बीमारी है जो सब ही जीवों को लगी रहती है, क्रोध अर्थात् जो वस्तु वा जो कार्य अपनी इच्छा के विरुद्ध हो उसको एकदम नष्ट कर देने की भड़क यह भी सब ही जीवों में होती है, यह बात दूसरी है कि अपने विरोधी का नाश करना अपनी शक्ति से बाहर होने के कारण वा उससे भय खाकर उसके नाश का उद्यम न किया जावे परन्तु अन्तरंग में तरंग ज़रूर उठती है और हृदय महा दुख मानता है, कभी २ तो जीव क्रोध के आवेग में आकर बिल्कुल ही बेसुध हो जाता है और ऐसे उलटे पुलटे कार्य कर बैठता है जिसका उसको पीछे से भारी पछतावा होता है, लोभ अर्थात् संसार की वस्तुओं की चाह तो जीव को इतनी ज़्यादा बढ़ जाती है कि संसार भर की सारी वस्तुवें मिलने पर भी वह चाह पूरी नहीं होती है किन्तु अधिक ही अधिक बढ़ती चली जाती है, जो पांच कमाता है वह दस की चाह करता है, और जब दस मिलने लगते हैं तो बीस की चाह हो जाती है, बीस मिलने पर पचास की और पचास मिलने पर सौ की इस तरह बढ़ती ही चली जाती है और कभी भी पूरी नहीं हो पाती है, इस चाह में ज़रूरत और बेज़रूरत का कुछ भी ख़याल नहीं होता है, यह तो एक प्रकार की बीमारी है जो सताया ही करती हैं, जिसके पास दस महल हों और ख़ाली पड़े रहते हों, सैकड़ों सवारी हों और

बेकार बंधी रहती हों और भी हज़ारों चीजें हों और फ़ालतू ही पड़ी रहती हों तो भी उसको यह चाह रहती है कि एक महल इस क़िसम का भी बने और एक उस किसम का भी बने, ऐसी भी सवारियां हों और वैसी भी हों, यह भी हो और वह भी हो, ग़रज़ संसारी जीव की हविस तो कभी भरती ही नहीं है, अगर सारी दुनिया भी मिल जाय तो नई दुनियां बनाने की हविस लग जाती है।

मान माया लोभ क्रोध यह चार कपाय कहलाती हैं जो जीवों को हर वक्त ही नाच नचाती रहती हैं, इनके इलावा रति अरति हास्य शोक भय जुगुप्सा पुरुष वेद स्त्री वेद और नपुंसक वेद यह नौ प्रकार की उनसे कुछ कम दर्जे की कपाय हैं जो नौ कपाय अर्थात् घटिया कपाय कहलाती हैं, रति अर्थात् किसी वस्तु से प्रीति करना पसंद करना दिल लगा- ना, अरति अर्थात् किसी वस्तु को नापसन्द करना, हास्य अर्थात् हंसना खुश होना, शोक अर्थात् रंज करना, भय अर्थात् डर मानना, जुगुप्सा अर्थात् घृणा करना ग्लानि करना नफ़रत करना, पुरुष वेद अर्थात् पुरुष को स्त्री के साथ काम भोग करने की इच्छा होना, स्त्री वेद अर्थात् स्त्री को पुरुष के साथ काम भोग की इच्छा होना, नपुंसक वेद अर्थात् हीजड़े को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ भोग करने की इच्छा का होना, इस प्रकार इन नौ कपायों के द्वारा भी जीवों को

तरह २ की तरंगें उठती रहती हैं और तरह २ का दुख भोगना होता है, चार प्रकार की कषाय और नौ प्रकार की नौ कषाय इन सब को सारांश में राग द्वेष वा मोह भी कहते हैं, जिस प्रकार मनुष्य शराब पीकर अपने आपे में नहीं रहता है अपनी असलियत को भूल जाता है और तरह २ की उलटी पुलटी चेष्टायें करने लगता है इस ही प्रकार संसारी जीव भी मोह में फंस कर तरह २ के नाच नाच रहा है और महा दुख पा रहा है, प्रत्यक्ष देख रहा है कि जितना २ भी जो कोई संसार की वस्तुओं की इच्छा करता है और कषायों में फंसता है उतना ही दुख उठाता है और जितना २ जो कोई अपनी इच्छाओं को कम करता है और कषायों को दबाता है उतना ही उतना वह सुखी है, यह इच्छायें और कषायें तो जीव का असली स्वभाव नहीं हैं किन्तु एक प्रकार की बीमारी है जो उसके साथ लगी चली आ रही है, खुजली का बीमार जिस प्रकार खुजा २ कर अपने शरीर को भी फाड़ डालता है, बलग़म का बीमार मिठाई के वास्ते तरसता है और पित्त का बीमार खटाई ही खटाई चाहता है इसही प्रकार कषायों का बीमार भी अपनी २ कषाय के अनुसार संसार में भटकता फिरता है, जिस प्रकार मिरच खाने का अभ्यासी बिना मिरच के खाना नहीं खा सक्ता है, चाहे मिरच खाने से उसको कोई भारी

बीमारी पैदा होती हो और बहुत दुख उठाना पड़ता हो तो भी वह विना मिरच खाये नहीं चूकता है, नशा करने का अभ्यासी भी नशा करना नहीं छोड़ता है ऐसा ही कषायों का अभ्यासी भी कषायों के ही अनुसार नाच नांचता है, सौ दुख उठाता है ज़लील होता है और धक्के खाता है पर अपनी कषायों को दूर नहीं कर सक्ता है, जिस प्रकार मिरच खाते रहने से मिरच खाने की आदत बढ़ती है और पक्की होती है, नशा करने से उस नशे की आदत बढ़ जाती है और पुख़ता हो जाती है इसही प्रकार जितना २ इन इच्छाओं और कषायों को पूरा किया जाता है उतनी ही उतनी यह भी ज़्यादा २ बढ़ती हैं और अधिक २ दुखदाई होती जाती हैं।

यह इच्छायें और कषायें जीव का असली स्वभाव नहीं हैं इसही वास्ते इनके दबाने से सुख शान्ति मिलती है और भड़काने से व्याकुलता और अशान्ति होती है, जीव का असली स्वभाव तो परम निराकुलता और शान्ति ही है, उस ही से सुख मिलता है, जीव तो वास्तव में सच्चिदानन्द स्वरूप है अर्थात् सत् चित और आनन्द रूप है, सत् अर्थात् वह अजर अमर है, किसी का बनाया हुवा नहीं है और न कोई इसका नाश ही कर सक्ता है इसही वास्ते सत् रूप है, चित् अर्थात् चैतन्य स्वरूप है, सर्व वस्तुओं के जानने की शक्ति इसमें है, आनन्द अर्थात् अपने परमशान्त स्वरूप में

अनन्दित रहना, किसी भी प्रकार की तरंग का न उठना इसका असली स्वभाव है इस ही वास्ते सत् चित् आनन्द रूप अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप है परन्तु अनादि काल से इन कषायों के चक्कर में फंसा हुवा तरह तरह के नाच नाच रहा है और तरह तरह दुख उठा रहा है, तरह तरह का रूप धारण करके संसार में भटकता फिर रहा है॥

जिन जीवों को अपने असली स्वरूप की पहचान होकर उस स्वरूप का दृढ़ विश्वास हो जाता है वह ही कषायों की इस वीमारी या अभ्यास को दूर करने की कोशिश में लग सक्ते हैं जिससे वह इस वीमारी को दूर करके अपने असली स्वरूप में आजावें, अपना परमानन्द पद प्राप्त करके सदा के लिये सिद्ध या मुक्त हो जावें, अपनी असली शुद्ध अवस्था प्राप्त कर लेने के वाद फिर जीव में कोई किसी भी प्रकार का विगाड़ पैदा नहीं हो सक्ता है, कषाय रहित शुद्ध जीव में तो कषाय पैदा ही नहीं हो सक्ती है, यह कषाय तो कषायवान में ही पैदा होती है इस वास्ते एक वार शुद्ध होने के पश्चात तो जीव सदा के लिये शुद्ध ही रहता है, मुक्त जीव तो सदा के लिये मुक्त ही रहते हैं, जहां वह अपने ज्ञान गुण से संसार की सब ही वस्तुओं को और उनकी सब ही पर्यायों को पूरी तरह जानते हैं परन्तु किसी भी वस्तु में किसी भी तरह का राग द्वेष नहीं करते हैं इसही वास्ते शान्त और

परमानन्द रहते हैं और परमात्मा कहलाते हैं,

जिस प्रकार मिरच खाना कमती २ करने से मिरच खाने की आदत छूट जाती है, शराव अफ़यून और भंग तम्बाकू आदि नशा करना कमती २ कर देने से नशा करने का अभ्यास जाता रहता है इसही प्रकार इन्द्रियों के विषयों की चाह और कषायों की भड़क भी उनको रोकते रहने और कमती २ करने से जाती रहती है, संसार का कोई भी जीव संसार की सब ही वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार नहीं रख सक्ता है जिससे वह संसार भर को अपनी इच्छाओं के अनुसार चला सके इसही वास्ते शक्तिहीन होने के कारण यूं तो संसार के सबही जीवों को अपनी इच्छायें और कषायें दबानी पड़ती हैं परन्तु इस प्रकार की लाचारी से तो यह इच्छायें और कषायें वाह्य रूप में ही दबती हैं अन्तरंग में तो वह ज्यों की त्यों बनी रहती हैं, जिस प्रकार लकड़ी को अन्दर ही अन्दर घुण लगा रहता है और उसका सत्यानाश होता रहता है इस ही प्रकार संसार की लाचारी से अपनी इच्छाओं और कषायों को दवाये रखने से तो यह अन्दर ही अन्दर पकती रहती हैं और बढ़ती रहती हैं, एक ग़रीव का लड़का किसी अमीर के लड़के को तरह तरह के मेवे मिठाई खाते और खूब भड़कदार ज़री के कपड़े पहने देख कर आप भी वह सब चीज़े खाना पहनना चाहता है परन्तु उसको वह चीज़ नहीं

मिलती हैं इस वास्ते मन मसोस कर ही रह जाता है, हम वाज़ार में जाते हैं मेलों में तरह २ की दूकानें सजी पाते हैं, मन सब ही चीजों की तरफ़ दौड़ता है पर हम अपने मन को दबा कर वह ही चीज़ें खरीदते हैं जिनके ख़रीदने की हमारी हैसियत है, कोई किसी के बाग़ में जाता है वहां तरह तरह के फल फूल देख कर उनको तोड़ने की इच्छा करता है परन्तु बाग़ के माली के डर से किसी भी चीज़ के तोड़ने का साहस नहीं करता है, बीमार आदमी रूखा फीका खाना खाता है और कड़वी कसैली दवा पीता है, परन्तु वह यह सब कुछ लाचारी के ही कारण कर रहा है, अन्तरंग में तो खूब चट पटी मज़ेदार चीज़ें खाने की चाह रखता है, पुलिस का सिपाही वा अन्य कोई ज़बरदस्त चार गाली सुना जाता है वा अन्य कोई ज़बरदस्ती कर जाता है तो ज़हर का सा घूंट पी कर सह ली जाती है, एक एक कौड़ी पर जान देने वाला बनिया न खाता है न पहनता है एक मात्र धन इकट्ठा करना ही अपना कर्तव्य समझता है परन्तु अपने बेटा बेटी के व्याह में बेधड़क हो कर धन लुटाता है, घर में नहीं होता है तो उधार लाकर लुटाता है, तो क्या उसने धन का लोभ करना छोड़ दिया है नहीं नहीं वह तो अपनी बिरादरी के रीति रिवाजों से लाचार होकर अपनी मान मर्यादा रखने के वास्ते ही अंधा बन रहा है और झोली भर भर धन लुटा रहा है,

इस काम से निबटते ही यहतो पहले से भी ज़्यादा लोभी हो जावेगा, कौड़ी कौड़ी के वास्ते जान देने लग जावेगा, और कंजूस मक्खी चूस बन कर सौ तरह की मायाचारी से पैसा कमावेगा, जेलखाने का क़ैदी जेल से मिले हुवे अपने कपड़े धोता है, अपनी जेल की कोठरी को लीपता और बुहारता है तो क्या वह जेल की इन चीज़ों से प्रीति करने लग गया है, नहीं नहीं वह तो लाचारी से ही यह सब कुछ कर रहा है, अन्तरंग में तो वह उन सब चीज़ों से घृणा ही कर रहा है, सौतेली माँ अपने सौतेले बेटे को खुलाती पिलाती और पहनाती उढ़ाती है परन्तु अन्तरंग में तो वह उससे द्वेष ही रखती है, बुड्ढे की जवान स्त्री जो अपने पति से प्यार मुहब्बत करती है रात भर उसके पास पड़ी रहती है तो यह सब लाचारी ही तो है, अन्तरंग में तो वह उससे घृणा ही करती है और शकल भी देखना नहीं चाहती है, स्त्री के देवर का व्याह हो रहा है, उसही बीच में उस स्त्री का पिता वा भाई वा भतीजा मर गया है जिसका महा शोक उसके अन्तरंग में हो रहा है परन्तु वह अपने सारे शोक को दबा कर देवर के व्याह में लगी रहती है और सब ही प्रकार का आनन्द कारज अपने हाथों कर रही है और ज़रा भी अपने शोक को ज़ाहिर नहीं होने देती है,

इस प्रकार सबही संसारी जीवों को अनेक लाचारियों

के कारण अपनी इच्छायें और कषायें दबानी पड़ती हैं परन्तु इस प्रकार के लाचारी के दबाव से तो वह इच्छायें और कषायें अन्दर ही अन्दर पकती और बढ़ती रहती हैं और मौका मिलने पर खूब ज़ोर शोर के साथ प्रगट हुआ करती हैं, जो जीव अपनी इच्छाओं और कषायों के वस में इतने ज़्यादा बंधे हुवे होतेहैं कि लाचारी आ पड़ने परभी नहीं दबा सक्तेहैं वह बहुत ज़्यादा ज़लील और ख़्वार होते हैं और महादुख उठाते हैं, पतंग नाम का कीड़ा रात को रोशनी की चाह में इतना विह्वल हो जाता है कि अपने शरीर को जलने से बचाने की भी सुध नहीं करता है और दीपक की लो पर पड़ कर जल मरता है, बड़ा भयंकर सांप भी बीन की आवाज़ पर विह्वल हो कर पकड़ा जाता है, अनेक लोग अपनी इन्द्रियों के वस हो कर अपनी तन्दरुस्ती बिगाड़ लेते हैं, भारी भारी रोगों में फंस कर महा दुख उठाते हैं, जो बीमार वैद्य की बताई हुई कड़वी कसैली दवा नहीं पी सक्ता है और खाने पीने बैठने उठने में परहेज़ नहीं रखता है वह अपने ही हाथों रोग को बढ़ा लेता है, बरसों चारपाई पर पड़ा पड़ा हाय हाय करता है और जब बीमारी बढ़जाने से कुछ खा ही नहीं सक्ता है तब ही कुपथ्य खाना छोड़ता है, जो लोग इच्छाओं के आधीन हो कर अपनी हैसियत से अधिक खर्च कर डालते हैं वह जल्दी ही कंगाल हो कर महा दुख उठाते हैं, जो अपने से

अधिक ज़बरदस्त के साथ भी गुस्से से पेश आते हैं या अकड़ दिखाते हैं वह नुक़सान ही उठाते हैं, गरज़ इस संसार में इच्छाओं और कषायों को तो दबाना ही पड़ता है जो नहीं दबाता है वह अपने हृदय को तो चाहे जितना दुख दे ले, व्याकुल हो ले और तरप ले पर सम्पूर्ण इच्छायें तो किसी की भी पूरी नहीं हो सक्ती हैं आखिर झक मार मन मसोस कर ही बैठना पड़ता है, जो बच्चा रात को चमकता चांद देख कर उसको पकड़ने के लिये रोता है वह चांद को तो नहीं पकड़ सक्ता है, रोते २ आखिर को लाचार हो कर उसे सो ही जाना पड़ता है, जो बच्चा खेलते २ हाथी के बहुत बड़े खिलौने को एक छोटी सी कुल्हिया में घुसेड़ना चाहता है उसको रो रो कर आखिर को चुप ही होना पड़ता है, बहुत बढ़िया सुस्वाद भोजन खाते खाते जब नाक तक पेट भर जाता है तो बड़े २ जिह्वा लम्पटियों को भी भोजन छोड़ कर तरस्ते हुवे यह ही कहना पड़ता है कि मन तो नहीं भरा है पर क्या करें पेट भर गया है इस वास्ते छोड़ना ही पड़ा है, बडे २ स्त्री लम्पटी जो हजारों स्त्रियां इकट्ठी कर लेते हैं, वह भी एक समय में एक ही स्त्री से भोग करने पर मजबूर होते हैं और वह भी थोडी देर के लिये, बडे २ राजा महाराजा ऐसी दवा ढूंढते ही मर गये जिससे वह २४ घंटे स्त्री भोग करते रहने के योग्य हो जावें पर किसी को भी

ऐसी दवा न मिल सकी, जिससे हजारों स्त्रियों के होते हुवे भी उनको मन मसोस कर ही रहना पड़ता है, ग़रज़ सम्पूर्ण इच्छायें तो न किसी की पूरी हुई और न हों सब ही को लाचार हो कर अपनी इच्छाओं को दवा कर मन मसोस कर बैठना पड़ता है, सब ही चाहते हैं कि हम न कभी बीमार हों और न बूढ़े हों और न कभी मरें, बल्कि जिनसे हम को प्यार है वह भी सब अमर अजर ही रहें, उनमें से भी कोई कभी न मरने पावे, पर किसी की भी यह इच्छा पूरी नहीं होती है, कोई चाहता है धूप निकले, कोई चाहता है मेंह बरसे, कोई चाहता है कि बादल तो रहे पर मेंह न बरसे, कोई चाहता है सर्दी हो कोई चाहता है गर्मी हो, कोई एक प्रकार की मौसम चाहता है और कोई दूसरे प्रकार की और इन सब की इच्छा भी स्थिर नहीं है किन्तु पल पल में बदलती रहती है तब इन जीवों की इच्छा के अनुसार तो संसार की प्रवृत्ति हो ही नहीं सक्ती है, संसार में तो जो कुछ हो रहा है वह संसार की वस्तुवों के स्वभाव के अनुसार ही हो रहा है, जीवों की इच्छा के आधीन तो कुछ भी नहीं होता है इस कारण संसार के जीवों को तो मन मसोस कर अपनी इच्छाओं को दबाना ही पड़ता है, संसारी जीवों को तो अपनी इच्छाओं और कषायों को दबा कर ही रहना पड़ता है, यह ही महान दुख है जो सब ही को भोगना हो रहा है,

अगर यह संसारी जीव अपनी इच्छाओं और कषायों को इस प्रकार की लाचारियों से मन मसोस कर दवाने के स्थान में इन इच्छाओं और कषायों को ही दुखदाई और एक प्रकार की बीमारी समझ कर उनके नाश करने के वास्ते ही उनको दवावें तो मन मसोसने और दुख मानने के वदले उनको इन इच्छाओं और कषायों के दवाने में ही आनन्द आने लगजावे, जब तक यह जीव यह समझ रहा है कि मैं अनेक प्रकार की लाचारियों और रुकावटों के कारण ही अपनी इच्छाओं और कषायों को दवाता हूं तब तक तो ज्यों ज्यों वह अपनी इच्छाओं और कषायों को दवाता है त्यों त्यों उसको दुख होता है, तब तक तो वह रो रो कर ही अपनी इच्छाओं और कषायों को दवाता है परन्तु जब वह इन इच्छाओं और कषायों को ही दुखदाई मानले तब तो ज्यों ज्यों उसकी इच्छायें और कषायें कम होती जावेंगी और दवती जावेंगी त्यों त्यों उसको हर्ष प्राप्त होता रहेगा, यह ही संसार के गुलाम में और धर्मात्मा में भेद है, दुनिया का गुलाम तो अपनी इच्छाओं और कषायों की पूर्ती चाहता है, उनके पूरा करने के लिये सब तरह की मिहनत करने, मुसीवत उठाने और कष्ट झेलने को तय्यार होता है और जब किसी प्रकार भी उनकी पूर्ती नहीं देखता है, बिल्कुल ही लाचार हो जाता है तब रो झींक कर उनको दवाने की

कोशिश करता है, इसही कारण दुख मानता है और धर्मात्मा इन इच्छाओं और कषायों को दुखदाई मान कर शुरू से ही इनके दवाने की कोशिश करता है इस कारण इनके दवाने में उसको दुख नहीं होता है किन्तु सुख होता है,

संसारी जीव अपनी इच्छाओं और कषायों को पूरा करने के वास्ते जैसा भारी भारी कष्ट उठाते हैं और जान जोखम में पड़ते हैं धर्मात्मा को अपनी आत्म शुद्धि के साधन में अर्थात् इन इच्छायों और कषायों के नष्ट करने में उससे बहुत ही कम कष्ट उठाना पड़ता है, दुनियां के गुलाम अपनी इच्छाओं की पूर्ती के वास्ते धन कमाना सबसे ज़रूरी समझते हैं धन कमाने के लिये रात दिन हड्डियां पेलते हैं, खून पसीना एक करते हैं, खाना पीना सोना जागना भी भूल जाते हैं, खुशामदें करते हैं, तावेदारी उठाते हैं, महा अपमान सहते हैं और झिड़के खाते हैं, देश विदेश घूमते फिरते हैं, जान जोखम में डालते हैं और तरह तरह के खतरे उठाते हैं, आराम तकलीफ़ और सर्दी गर्मी सब भूल जाते हैं, धोबी कुड़ कुड़ाते जाड़े में पहर के तड़के उठकर नदी पर जाता है और बरफ़ के समान ठंडे पानी में घुस कर कपड़े धोने लग जाता है, लुहार और हलवाई जेठ आसाढ़ की कड़कती गर्मियों में सारी दोपहरी आग की भट्टी के सामने बैठ कर काम करता है, उसही दोपहरी में किसान अपने खेतों में हल

चलाता है और शरीर को जलाती और दभ्कती हुई सारी धूप अपने ऊपर लेता है, इसही प्रकार की महान तपस्या सब ही संसारी जीवों को करनी पड़ती है तोभी उनकी इच्छायें पूरी नहीं होती हैं, अपनी अधिकतर इच्छायें तो उनको दबानी ही पड़ती है, परन्तु अपनी आत्मा की शुद्धि करनेवाले धर्मात्मा अपनी सिद्धि में इतना कष्ट हर्गिज़ भी नहीं उठाते हैं, वह तो शान्ति और संतोष के साथ अपनी इच्छाओं और कषायों को दबाने की कोशिश करते हैं जिससे फिर कोई किसी प्रकार की इच्छा वा कषाय पैदा ही न होने पावे, इन का सर्व नाश होकर अपनी आत्मा शुद्ध और पवित्र होजावे, इसही कारण इनको अपनी इच्छाओं और कषायों के दबाने में दुख नहीं होता है किन्तु सुख होता है, धर्मात्मा अपनी कषायों को नाश करने में न तो भड़कते हैं न भटकते हैं न जोश लाते हैं न दुख उठाते हैं किन्तु शान्ति और आनन्द के साथ अपने साधन में लगे रहते हैं, वह भली भांति जानते हैं कि अनादि काल से लगी आई हुई यह कषायों की बीमारी एकदम दूर नहीं होसक्ती है इस वास्ते न तो वह घबराते हैं और न निराश ही होते हैं किन्तु जिस प्रकार होशियार चाबुक सवार दंगई घोड़े को आहिस्ता २ सधाता है और क़ाबू में लाता है इस ही तरह वह भी धीरज के साथ अपने साधन में लगे रहते हैं और अन्त को इन कषायों से छुटकारा पाकर सदा के लिये

अपना सच्चिदानन्द और परमानन्द पद प्राप्त करलेते हैं,

* तीसरा अध्याय *

इस प्रकार जिन जीवों को अपने असली स्वरूप की पहचान होकर उसका दृढ़ विश्वास हो जाता है वह ही अपनी आत्मा को विषय कषायों से छुड़ाकर शुद्ध और पवित्र बनाने की कोशिश में लगसक्ते हैं, परन्तु संसार के सबही जीव ऐसे ज्ञान वान और विचार वान नहीं हो सक्ते हैं जो अपनी असलियत को पहचान सकें, बनस्पति आदि एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय चौ इन्द्रिय जाति के अनेक कीड़े और असंज्ञी पंचेंद्रिय अर्थात् सबही बिना मन वाले जीव तो विचार शक्ति ही नहीं रखते हैं, वह तो इस योग्य ही नहीं हैं जो अपनी असलियत को पहचान सकें, पंचेन्द्रिय संज्ञी अर्थात् मन वाले जीव ही विचार शक्ति रखते हैं और वह ही अपनी असलियत को पहचान सक्ते हैं, अपनी असलियत को पहचानने के बाद भी तुरन्त ही उसकी प्राप्ती की कोशिश में लग जाना आसान नहीं है, जिस प्रकार शराब वा अफीम वा भंग तम्बाकू का नशा करने के चिर अभ्यासी पक्की नशे बाज़ यह बात भली भांति जान लेने पर भी कि जो नशा हम करते हैं वह हमारी तंदरुस्ती को बिगाड़ रहा है अन्य प्रकार भी महा दुखदाई हो रहा है तुरन्त उस नशे को नहीं छोड़ सक्ते हैं, नशे को महा दुखदाई जानकर भी नशा करते

हैं, चाहते हैं कि किसी प्रकार इसको छोड़दें परन्तु नहीं छोड़ सक्ते हैं, इसही प्रकार अपनी असलियत को जानलेने वाले भी अनेक जीव विषय कषायों को छोड़कर अपना असली स्वरूप प्राप्त करलेने की इच्छा तो रखते हैं परन्तु कषायों से लाचार होकर उनही का नाच नाचते हैं, यद्यपि वह तुरन्त ही अपनी आत्मा की शुद्धि में नहीं लग गये हैं तौभी लगने वाले ज़रूर हैं और उनसे लाख दर्जे अच्छे हैं जिनको अभी अपनी आत्मा के स्वरूप की पहचान ही नहीं हुई है, जो विषय कषायों को ही अपना असली स्वरूप जानते हैं, उन को भड़काये रखना और उनकी पूर्ती करते रहना ही अपना परम कर्तव्य मानते हैं, ऐसे दीर्घ संसारी जीव तो संसार में ही भटकते फिरैंगे और कदाचित भी अपनी दुरुस्ती की फ़िकर नहीं करैंगे, सुधरने की आशा तो उनही से हो सक्ती है जिन्होंने अपनी असलियत को पहचान लिया है और उस अपने असली स्वरूप का पक्का श्रद्धान हो गया है, चिरकाल से लगी आई हुई कषायों को यद्यपि वह एक दम दबादेने का साहस नहीं करते हैं, उनही के अनुसार चलते हैं तौभी अन्तरंग में इनपर क़ाबू पाने का विचार ज़रूर रखते हैं, इन को अपना वैरी ज़रूर जानते हैं और इनसे छुटकारा पाना ज़रूरी समझ रहे हैं, इस कारण कभी न कभी इस कोशिश में लग ही जावेंगे, ऐसे लोगों के प्रशम संवेग अनुकम्पा और

आस्तिक्य यह चार वाह्य चिह्न बताये गये हैं, प्रशम अर्थात् विषय कषायों में उसको रुचि नहीं होती है, अपने वैरी का भी बुरा नहीं चाहता है और यह ही समझता है कि जो कुछ सुख दुख मुझको मिल रहा है वह सब मेरे ही कर्मों का फल है, संवेग अर्थात वह संसार को महादुखदाई और अहित करने वाला समझ कर उससे दिल नहीं लगाता है किन्तु इस संसार को क़ैदख़ाना मानकर जोकुछ करता है वह लाचारी जानकर उसही प्रकार करता है जिस प्रकार कि क़ैदी क़ैदख़ाने का काम किया करता है, क़ैदी क़ैदख़ाने को अपना घर नहीं मानता किन्तु उससे छुटकारा ही पाना चाहता है तोभी क़ैदख़ाने का सब काम करता है, इसही प्रकार अपने स्वरूप को जानलेने वाला सच्चा श्रद्धानी भी इस संसार से छुटकारा पाना चाहता है तोभी जबतक वह अपनी कषायों पर क़ाबू पाने योग्य नहीं हुवा है तब तक संसार के सबही काम करता है, अनुकम्पा अर्थात वह सबही जीवों को अपने समान समझकर सबही का भला चाहता है, सबही के ऊपर दया का भाव रखता है, आस्तिक्य अर्थात वह जीवात्मा को अजीव पदार्थों से भिन्न पहचान कर उसको चैतन्य स्वरूप अजर अमर पदार्थ मानता है और उसकी असलियत को पहचान गया है,

जिस प्रकार घोड़े को क़ाबू में रखने के वास्ते उसके

मुँह में लगाम डालकर बड़ी सावधानी से थामे रखने की ज़रूरत है इसही प्रकार इच्छाओं और कषायों को भी क़ाबू में रखने के वास्ते अपने को नियमों के बंधन में बांधना पड़ता है अर्थात पापों से बचा रहने के वास्ते कुछ व्रत धारण करने होते हैं, इसके लिये मोटे पांच व्रत धारण करने ज़रूरी समझे गये हैं (१) अहिंसा अर्थात किसी जीव को किसी भी प्रकार का दुख न देना, (२) सत्यभाषण अर्थात हितमित रूप ऐसा वचन बोलना जिससे किसी की हानि न होती हो, किसी को धोका फ़रेब न होता हो (३) चोरी न करना अर्थात बिना दिये किसी की वस्तु न लेना, (४) ब्रह्मचर्य अर्थात काम सेवन न करना (५) अपरिग्रह अर्थात संसार की वस्तुओं में दिल न लगाना, जो विशेष धर्मात्मा इन पांचों व्रतों को पूर्ण रूप से धारण करते हैं और गृह त्याग कर पूर्ण रूप अपनी आत्मा की ही शुद्धि में लगजाते हैं वह त्यागी, वैरागी, महाव्रती वा साधु वा मुनि कहलाते हैं और जो घर नहीं छोड़ सक्ते और इन व्रतों को भी अधूरा ही पालते हैं वह गृहस्थी वा श्रावक कहलाते हैं, इस प्रकार धर्म में लगने वालों के तीन दर्जे हैं, एक तो वह जो अपनी आत्मा के स्वरूप को तो पहचान गये हैं और उसकी शुद्धि भी करना चाहते हैं परन्तु अभी किसी प्रकार का भी कोई व्रत ग्रहण नहीं कर सके हैं वह अव्रती सम्यग्दष्टी वा असंयमी सम्यग्दृष्टी कहलाते हैं, दूसरे

वह हैं जो अभी इन पांचों व्रतों को पूर्ण रूप धारण नहीं कर सके हैं कुछ कुछ अणु रूप ही धारण किये हुवे हैं वह अणु व्रती वा देश व्रती श्रावक कहलाते हैं, तीसरे वह हैं जो पूर्ण रूप से इन व्रतों को धारण किये हुवे हैं और साधु वा मुनि कहलाते हैं,

जिन्होंने पूर्ण रूप साधना करके कषायों को सर्वथा नाश करदिया है और अपनी आत्मा को शुद्ध करके अपना असली रूप प्राप्त करलिया है जिसके कारण उनका ज्ञान गुण प्रगट होकर संसार के समस्त पदार्थ उनके ज्ञान में झलकने लग गये हैं इसही वास्ते केवली वा सर्वज्ञ कहलाते हैं और समस्त कषायों को दूर करदेने के कारण अपने परमानन्द स्वरूप में मग्न हैं और जिन कहलाते हैं वह जब तक शरीर नहीं छोड़ते हैं तब तक अरहंत कहलाते हैं और जब आयु पूर्ण होने पर देह छोड़कर पूर्ण मुक्त हो जाते हैं तब सिद्ध कहलाते हैं, इस प्रकार एकतो वह जीव हैं जिनको अपनी आत्मा की पहचान ही नहीं है वह मिथ्यात्वी कहलाते हैं, एक वह हैं जिनको अपनी आत्मा की पहचान तो होगई है पर अभी उसके शुद्ध करने के साधन में नहीं लगे हैं वह अव्रती सम्यग्दृष्टी कहलाते हैं एक वह हैं जो सम्यग्दृष्टी होकर अणुरूप व्रतों को धारण किये हुवे हैं वह अणुव्रती कहलाते हैं, एक वह हैं जिन्होंने सम्यग्दृष्टी होकर पूर्ण रूप से व्रतों को धारण कर

लिया है और सर्वांगरूप से अपनी आत्मा के कल्याण में लगगये हैं, एक वह हैं जिन्होंने अपनी आत्मा की शुद्धि तो करली है परन्तु अभी शरीर नहीं छोड़ा है वह अर्हंत वा जिन वा जिनेंद्र कहलाते हैं और जिन्होंने शरीर छोड़ कर मोक्ष प्राप्त करलिया है वह सिद्ध हैं अर्हंत और सिद्ध अर्थात जिन्हों ने कषायों से छुटकारा पाकर अपना असली ज्ञानानंद स्वरूप हासिल करलिया है और महाव्रती वा साधु जो पूर्णरूप से अपना असली स्वरूप प्राप्त करने के साधन में लगेहुये हैं यह तीनों ही पूजने ध्याने याद करने गुण गाने और स्तुति भक्ति करने के योग्य हैं जिससे हमको भी इसही प्रकार की सिद्धि में लगने का हुल्लास हो, हमको भी कषायों से छुटकारा पाकर अपना असली स्वरूप प्राप्त करने का उत्साह हो, उनको याद करके हम भी इन कषायों को क़ाबू करने और इन पर विजय पाने का साहस करैं,

जैनधर्म की सबसे बड़ी खूबी एक यह भी है कि उसमें पूजा भक्ति और स्तुति अपने पूज्य को खुश करने वा उसको लालच देकर उससे अपना कोई कारज सिद्ध कराने के वास्ते नहीं होती है किन्तु उनकी बड़ाई अपने हृदय में धारण करके स्वयम भी वैसा ही बनने का उत्साह पैदा करने के वास्ते ही की जाती है, जैनधर्म के पूज्य श्री अर्हंत और सिद्ध तो सर्व प्रकार की कषायों का नाश करके और दुनिया से बिल्कुल ही बेग़-

म होकर के अपने ज्ञानानंद में मग्न हैं, कोई उनकी बड़ाई करै तो क्या और बुराई करै तो क्या, कोई उनकी पूजा करै तो क्या और कोई गालियां दे तो क्या उनके परम शान्तरूप परमानन्द में तो संसारी जीवों का इन बातों से कुछ भी विकार नहीं आसक्ता है, कोई भी उनको वीतरागरूप से सराग रूप नहीं बना सक्ता है तब वह कैसे किसी का कारज साधने वा बिगाड़ने में उद्यमी हो सक्ते हैं, यह तो संसार के ओछे जीवों का ही काम है जो कषाय के वश होकर खुशामद करने से खुश हो जाते हैं और बुराई करने से बिगड़ जाते हैं, श्री अरहंत और सिद्ध तो न किसी से खुश होते हैं और न किसी से नाराज़ होते हैं वह तो सदा एक रस महा शान्त स्वरूप ही रहते हैं, इसही प्रकार जैनधर्म के साधु भी महाव्रत धारण कर के पूर्ण रूप से अपनी कषायों के नाश करने में ही लगे हुवे होते हैं इस कारण वह भी अपनी बड़ाई सुनकर खुश और बुराई सुनकर नाराज़ नहीं हो सक्ते हैं और न किसी का कोई सांसारीक कारज सिद्ध करने में ही लगसक्ते हैं, उन्होंने तो अपने ही सारे सांसारीक कारज त्याग दिये हैं तब दूसरों का कारज तो वह क्या ही करसक्ते हैं, जैनधर्म तो साफ़ शब्दों में ही पुकार २ कहता है कि जो पूजा भक्ति वा स्तुति करने से खुश होता हो और बुराई करने से बिगड़ता हो वह पूज्य ही नहीं हो सक्ता है, वह तो कषायों का गुलाम मामूली संसारी जीव

है जो किसी प्रकार भी पूज्य नहीं हो सक्ता है, जैनधर्म तो डंके की चोट कहता है कि जैनधर्म के पूज्य श्री अरहंत सिद्ध और साधु तो किसी का कोई भी सांसारीक कारज सिद्ध करने के वास्ते तय्यार नहीं हो सक्ते हैं जो कोई उनकी पूजा भक्ति वा स्तुति अपने किसी सांसारीक कारज की सिद्धि के वास्ते करता है वह जैनी नहीं है, अनजान है, मूर्ख है, संसार का गुलाम है और अपनी इच्छाओं और कषायों की तरंग में बेसुध होरहा है तबही तो संसार के त्यागी परम वैरागी शान्त स्वरूप अपने ग्यानानन्द स्वरूप में मग्न श्री अरहंत सिद्ध वा इसही अवस्था की प्राप्ति की सिद्धि में लगेहुवे परम वीतरागी साधुओं से अपना सांसारीक कारज सिद्ध कराना चाहता है इसही कारण उलटा पाप का भागी होता है जिससे उसका कारज बनता २ भी बिगड़ जावे, पाप का उदय होकर कोई न कोई विघ्न खड़ा हो जावे, संसार की चाह में अति बहल हो जाना, इच्छाओं का गुलाम होकर अंधा बनजाना ही तो घोर पाप का कारण होता है, संसार के महा मोह से ही तो यह जीव संसार में भटकता फिरता है, तब श्री वीतराग भगवान वा परमवैरागी साधुओं की पूजा भक्ति भी अपने सांसारीक कारजों की सिद्धि के लिये करने से ज्यादा और क्या संसार की गुलामी और बहवलता हो सक्ती है उनकी पूजा भक्ति तो उन ही के गुणों की प्राप्ति के लिये कारजकारी है, बिना किसी

सांसारीक इच्छा के उनके परमवैरागरूप शान्त स्वरूपका ध्यान करने से हृदय में शान्ति आती है, कषायें ढीली पड़जाती हैं, पाप दबजाते हैं, हृदय में आनन्द आने लगजाता है और अपना असली ज्ञानानन्द स्वरूप प्राप्त करने की उमंग भी पैदा होने लगजाती है, यह ही महान् कारज उनकी पूजा भक्ति और स्तुति से सिद्ध होता है,

साधु लोग बहुतकरके संघ बनाकर इकठे ही रहते हैं जिससे वह सब एक दूसरे को संसार की तरफ़ गिरने और कषायों में फंसने से बचातेरहैं, संघ के साधुओं में एक संघपति हो जाता है जो आचार्य कहलाता है वह ही नवीन साधु बनाता है, और संघ का कोई साधु किसी प्रकार का दोष करबैठता है तो उसको दंड देकर ठीक करता है, इसही संघ में जो शास्त्र के अधिक जानकार होते हैं वह मुनियों को शास्त्र पढ़ाते हैं और उपाध्याय कहलाते हैं, अन्य सब मुनि-साधु कहलाते हैं, इस प्रकार साधुओं के तीन भेद होकर अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु यह पांच परमेष्ठी कहलाते हैं, उनके वैराग्यरूप गुणों की प्राप्ति के वास्ते उनको नमस्कार करना यह ही जैनधर्म का महामंत्र है जो प्राकृत भाषा में इस प्रकार है

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं,

जो जीव कर्मों का नाश करके सर्वज्ञ और केवल ज्ञानी हो जाते हैं और अरहंत कहलाते हैं उनमें अनेक ऐसे भी होते हैं जो केवल ज्ञान प्राप्त करने पर देश देश घूमकर जगत के जीवों को उपदेश देकर धर्म का मार्ग चलाते हैं, वह ही तीर्थंकर कहलाते हैं, ऐसे तीर्थंकर इस जुग में २४ हो चुके हैं जिनके पवित्र नाम इस प्रकार हैं

श्री वृषभ, अजित, शंभव, अभिनंदन सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस. वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान, (महावीर)

इनही श्री तीर्थंकर भगवानों की वीतरागमूर्ति जैन मंदिरों में रखी जाती है जिनके दर्शनों से वैराग्य की शिक्षा मिलती है, इसही बात के लिये यह वीतराग मूर्तियां मंदिरों में रखी जाती हैं और नित्य प्रति सुबह उठकर उनके दर्शन करना ज़रूरी समझा जाता है जिससे श्री वीतराग भगवान की याद आकर और उनकी वीतरागता हृदय में अंकित होकर दिनभर इच्छाओं और कषायों में विहल होने से बचा रहने की प्रेरणा होती है, यह ही उनकी पूजा भक्ति करने की असली ग़रज़ है, इसही कारण उनकी पूजा भक्ति और स्तुति ऐसी ही रीति से होनी चाहिये जिससे उनके त्याग वैराग्य का प्रभाव अपने हृदय में जमकर अपनी इच्छायें और कषायें ढीली

होती रहैं, वहलता और संक्लेशता कम होकर हृदय में शान्ति आवे और संसार की गृद्धता और व्याकुलता कम होकर अपने असली स्वरूप की प्राप्ति की सुध बुध होने लगजावे, मान माया लोभ क्रोध के जोश ठंडे होकर हृदय में निराकुलता आने लगजावे, रागद्वेष का भूत उतरकर मनुष्य अपने आपे में आजावे और इनसे छुटकारा पाने की कोशिश में लगजावे,

* चौथा अध्याय *

कषायों का कार्य अनेक प्रकार का होता है और उनके अनेक दर्जे हैं, जैसाकि क्रोद्ध के चार दर्जे इस प्रकार किये जासक्ते हैं (१) ऐसा क्रोध जो पत्थर की लकीर की तरह मिटने में ही न आवे (२) ऐसा क्रोध जो धरती में लकीर करदेने के समान हो (३) ऐसा क्रोध जो रेत में लकीर कर देने के समान हो (४) ऐसा क्रोध जो पानी पर लकीर कर देने के समान हो, इसही प्रकार मान के भी चार भेद किये जासक्ते हैं [१] ऐसा मान जो पत्थर के समान किसी प्रकार भी न झुके [२] ऐसा मान जो हड्डी के समान हो और वहुत कोशिश करने से झुक सक्ता हो [३] ऐसा मान जो लकड़ी के समान हो और आसानी से ही झुक सक्ता हो [४] ऐसा मान जो वैत की छड़ी के समान हो और तुरंत झुक जाता हो, इसही प्रकार माया के भी चार भेद किये जासक्ते हैं

(१) ऐसी माया जो बांस की जड़ के समान बहुत ही ज़्यादा पेचदार हो और सीधी नहीं की जासक्ती हो (२) ऐसी माया जो मेंढे के सींग के समान वलदार हो (३) ऐसी माया जो गौ मूत्र के समान टेढ़ी हो (४) ऐसी माया जो धरती पर गाय के खुर के समान एक ही वल रखती हो, इसही प्रकार लोभ के भी चार भेद किये जासक्ते हैं [१] ऐसा लोभ जो ऐसे पक्के रंग के समान हो जो बहुत ही मुश्किल से उतर सके [२] ऐसा लोभ जो लोहे के रंग के समान कुछ कम मुश्किल से हटसके [३] ऐसा लोभ जो मामूली मैल के समान जल्दी उतर जावे [४] ऐसा लोभ जो कपड़े पर गर्द पड़ जाने के समान हो और तुरन्त ही हट जाता हो ॥ प्रथम दर्जे के क्रोध मान माया लोभ से नरक गति मिलती है दूसरे दर्जे के क्रोध मान माया लोभ से तिर्यंच गति मिलती है, तीसरे दर्जे के क्रोध मान माया लोभ से मनुष्य गति मिलती है और चौथे दर्जे के क्रोध मान माया लोभ से देव गति मिलती है,

इस प्रकार दृष्टान्त के तौर पर मोटे रूप यह चार भेद किये जाते हैं वैसे तो कषायों के लाखों और करोड़ों दर्जे होसक्ते हैं, गरज़ इस कथन से यह ही है कि प्रत्येक जीव को जहांतक होसके अपनी कषायों को ढीला और कमज़ोर करते रहने की ही कोशिश रखनी चाहिये, दूसरी रीति से इन कषायों के चार भेद इस प्रकार भी किये जाते हैं (१) ऐसी कषाय

जो अपनी आत्मा के असली स्वरूप की पहचान भी नहीं होने देती है अर्थात जिसके होते हुवे सम्यग्दर्शन भी नहीं हो सक्ता है ऐसा क्रोध मान माया लोभ अनन्तानुबन्धी कहलाता है (२) ऐसी कषाय जिसके होते हुवे सम्यग्दर्शन तो होसक्ता है किन्तु किसी भी प्रकार का व्रत धारण नहीं किया जासक्ता है यहांतक कि अणुव्रत भी धारण नहीं होसक्ता है, ऐसा क्रोध मान माया लोभ अप्रत्याख्यानी कहलाता है (३) ऐसी कषाय जिसके होते हुवे अणुव्रत तो धारण किये जासक्ते हैं किन्तु महाव्रत धारण नहीं होसक्ते हैं, ऐसा क्रोध मान माया लोभ प्रत्याख्यानी कहलाता है (४) ऐसी कषाय जिसके होते हुवे भी महाव्रत धारण होसक्ते हैं, अर्थात ऐसा क्रोध मान माया लोभ जो साधु मुनि में भी रहता है और संज्वलन कहलाता है, संज्वलन के दूर होने पर ही जीव निष्कषाय होता है और तब ही उसका केवल ज्ञान प्रगट होता है

तीव्र और मंद अर्थात कषायों के वेग वा जोश और भड़क की तेज़ी और हलकेपन के हिसाब से प्रत्येक कषाय के तीव्र और मंद यह दो मोटे भेद होते हैं, अपेक्षारूप तीव्र कषाय को अशुभ वा खोटी और मंद कषाय को शुभ वा नेक कहते हैं, तीव्र कषाय से पाप और मंद कषाय से पुन्य पैदा होता है, इन पाप पुन्यरूप करनी का अर्थात बुरे भले कर्मों का ही इस संसार में दुख सुख रूप फल भोगना पड़ता है,

संसारी जीव तो तीव्र वा मंद कषायों के द्वारा हरवक्त कुछ न कुछ बुरी भली करनी करता ही रहता है, मन से वचन से वा काया से कुछ न कुछ होता ही रहता है इस कारण संसारी जीव को तो हरवक्त ही सावधान रहकर अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये, कभी भी अपनी कषायों को तीव्र नहीं होने देना चाहिये, जिस प्रकार घोड़े का सवार दंगई घोड़े की लगाम बड़ी सावधानी से थांबे रहता है तब ही उस को अपनी इच्छा के अनुसार चलासक्ता है, सवार के ज़रा भी असावधान हो जाने पर घोड़ा बेक़ाबू हो जाता है और सवार को चाहे जिधर लेजाकर जापटकता है इस ही प्रकार यह कषायें भी जीव के असावधान होजानेपर बेक़ाबू हो जाती हैं और महादुखदाई अवस्था में जापटकती हैं, इस वास्ते इन कषायों को क़ाबू में रखने के लिये तो बहुत ही भारी सावधानी और होशियारी की ज़रूरत है,

इन तीव्र और मंद कषायों के द्वारा जो क्रिया की जाती है वह लेश्या कहलाती है, तीव्र और मंद वा शुभ और अशुभ इन दोनों ही प्रकार की लेश्याओं के उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य यह तीन तीन दर्जे करने से लेश्या के छै दर्जे होजाते हैं (१) तीव्रतम अर्थात बहुत ही ज़्यादा तेज़ (२) तीव्रतर अर्थात बहुत तेज़ (३) तीव्र अर्थात मामूली तेज़ (४) मंद अर्थात मामूली हल्की (५) मंद तर अर्थात बहुत हल्की (६)

मंद तम अर्थात् बहुत ही ज़्यादा हल्की, इन छै प्रकार की हलकी भारी कषायों द्वारा जो क्रिया होती है वह छै प्रकार की लेश्या कहलाती है जो कृष्ण २ नील ३ कापोत ४ पीत ५ पद्म ६ शुक्ल इन छै नामों से पहचानी जाती है, कृष्ण नील और कापोत पाप पैदा करनेवाली हैं और अशुभ कहलाती हैं, पीतपद्म और शुक्ल पुन्य उपजाती हैं, और शुभ कहलाती हैं, कृष्ण से महापाप, नील से उससे कम पाप और कापोत से हल्का पाप होता है, पीत से हल्का पुन्य, पद्म से कुछ ज़्यादा पुन्य और शुक्ल मे बहुत ही ज़्यादा पुन्य होता है, इन छहों लेश्याओं की क्रियाओं को दिखाने के वास्ते शास्त्रों में यह दृष्टान्त दिया जाता है कि छै भूखे मुसाफ़िरों को जंगल में एक फल-दार वृक्ष मिल गया, उनमें से कृष्णलेश्या वाले को तो यह भड़क होगी कि इस वृक्ष को जड़ से उखाड़ फेंकूं और फल खाऊं, नील लेश्या वाला चाहेगा कि इस वृक्ष को जड़ के ऊपर से काट कर गिरादूं, कापोत लेश्या वाला चाहेगा कि इसकी बड़ी शाखा काट कर गिरादूं, पीत लेश्या वाला चाहेगा कि छोटी डाली ही तोड़लूं, पद्म वाला चाहेगा कि फल ही तोड़ तोड़ कर खालूं और शुक्ल लेश्या वाला चाहेगा कि नीचे पड़े हुवे फल खाकर ही पेट भरलूं, इसका दूसरा दृष्टान्त इस प्रकार भी दिया जासक्ता है कि काम भोगी छै पुरुषों में कृष्ण लेश्या वाला तो अपनी काम वासना में ऐसा

उन्मत्त होगा कि अपनी बेटी बहन वा मां मावसी का भी विचार नहीं करैगा, उनपर भी कुदृष्टि डालने से नहीं चूकेगा और पराई स्त्रियों को भी ज़बरदस्ती पकड़ लाकर उनसे ज़बर दस्ती कामभोग करना चाहेगा, नील लेश्या वाला अपनी बेटी बहन और मावसी पर तो कुदृष्टि नहीं डालेगा पर चाची ताई आदि अन्य सम्बंधी स्त्रियों पर उसका मन ज़रूर चलैगा और पराई स्त्रियों को भी ज़बरदस्ती तो नहीं पकड़ैगा परन्तु उनको क़ाबू में लाने के वास्ते अनेक जाल ज़रूर डालैगा, धन भी खर्चेगा और कष्ट भी उठावेगा और बेशरम बेहया भी बनजावेगा, कपोत लेश्या वाला सम्बंधी स्त्रियों पर तो बुरी निगाह नहीं करैगा और न पराई स्त्रियों को क़ाबू में करने के वास्ते अधिक उपाय ही करैगा, परन्तु पर स्त्री की चाह ज़रूर रक्खेगा, पीत लेश्या वाला पर स्त्री पर तो कुदृष्टि नहीं करैगा परन्तु अनेक स्त्रियां ब्याह लाने की कोशिश ज़रूर करता रहैगा और रात दिन उनके साथ कामभोग में ही रत रहैगा, पद्म लेश्या वाला अपनी एक ब्याहता स्त्री में ही संतोष रक्खेगा और उसही पर आसक्त रहैगा, शुक्ल लेश्या वाला अपनी एक स्त्री पर भी अधिक आसक्त न होगा और सन्तान उत्पत्ति के वास्ते ही कामभोग करना चाहेगा और उसके लिये भी अधिक उत्सुक नहीं होगा,

इस प्रकार छहों लेश्याओं का स्वरूप समझाने के

वास्ते ही यह दृष्टान्त दिया गया है, इसमें ठीक ठीक स्वरूप बांधने का कुछ अधिक विचार नहीं किया गया है, इसही प्रकार दूसरा दृष्टान्त यह होसक्ता है कि छै प्रकार के धन के लोभियों में से एकतो डाका डाल कर और लोगों को जान से मार कर धन प्राप्त करता है, दूसरा रात को चुपके से किसी के मकान में घुसकर चोरी करता है पर डाका नहीं डालता है, तीसरा किसी के मकान में भी नहीं घुसता है किन्तु आंख बचाकर किसी की वस्तु उठालेजाने से नहीं चूकता है, चौथा किसी दूसरे की वस्तु तो नहीं उठाता है पर धन के वास्ते अत्यन्त वहल रहता है सट्टा फाटका लाटरी आदिक से एक दम धन प्राप्ति चाहता है, पांचवां सट्टाफाटका तो नहीं लगाता है पर धन कमाने में अत्यन्त विह्वल जरूर रहता है, छटा वह्-वल नहीं होता है आसानी जो मिलता है उसही में संतोष करता है, इसही प्रकार अन्य सब कषायों की बावत भी दृष्टान्त बनाये जासक्ते हैं, गरज़ इन दृष्टान्तों से यह है कि जहांतक होसके अपनी कषायों को घटाया जावे जिससे अपनी आत्मा अधिक मलिन न होने पावे, कुछ सुधरने ही लगजावे, नारकियों के परिणाम तीव्र कषाय रूप रहते हैं इस वास्ते उनके कृष्ण नील कापोत यह तीन अशुभ लेश्या ही होती हैं, स्वर्ग के देवों की कषाय मंद होती है इस वास्ते उनके पीत पद्म और शुक्ल यह तीन शुभ लेश्यायें ही होती हैं, मनु-

ष्य और तिर्यंचों के छहों प्रकार की लेश्यायें होती हैं परन्तु तिर्यंचों में भी एक दो तीन चार इन्द्रिय वाले जीवों के कृष्ण नील कापोत यह तीन अशुभ लेश्या ही होती हैं, असंज्ञी पंचेंद्रिय के कृष्ण नील कापोत और पीत यह चार लेश्यायें होती हैं, बाकी सब तिर्यंचों के छहों लेश्या होती हैं, मिथ्यात्वी और असंयमी सम्यग्दृष्टि के भी छहों लेश्या होती हैं परन्तु अणुव्रती श्रावक और महाव्रती मुनि के पीत पद्म और शुक्ल यह तीन शुभ लेश्या ही होती हैं और अधिक ऊंचे चढ़जाने पर मुनियों के एक शुक्ल लेश्या ही रहजाती है,

अब इन छहों लेश्या वालों के मोटे रूप कुछ वाह्य चिन्ह नीचे लिखे जाते हैं,

(१) कृष्ण लेश्या वाला—तीव्र क्रोधी, वैर को न छोड़ने वाला, लड़ने का स्वभाव रखने वाला, धर्म और दया से रहित, महा ज़िद्दी और हट्टी, किसी के भी बस में न आनेवाला, धर्म उपदेश जिसको न रुचता हो, अत्यंत कुपित रहता हो, मुख का आकार भी जिसका भयंकर हो, अत्यंत क्लेश करने वाला और संतोष आदि न करने वाला होता है,

(२) नील लेश्या वाला—आलसी मंद बुद्धि चंचल स्वभावी आरम्भे कार्य को पूरा न करने वाला भयभीत रहने वाला इन्द्रियों के विषयों का अति लालसा वाला, मायाचारी, अत्यन्त तृष्णावान, महा अहंकारी, दूसरों को ठगने

वाला, झूठ बोलने वाला, बहुत सोने वाला और धन दौलत की अति चाह रखने वाला होता है,

(३) कापोत लेश्या वाला—बात बात में रूसने वाला, दूसरों को दोष लगाने वाला, निंदा करने वाला, बहुत शोक करने वाला, बहुत भय मानने वाला, किसी पर विश्वास न करने वाला, दूसरों को भी अपने समान मानने वाला, अपनी बड़ाई सुनकर खुश होने वाला, अपने हानि लाभ को न समझने वाला, रण में मरने की इच्छा रखने वाला, अपनी बड़ाई करने वालों को सबकुछ देडालने वाला, कार्य अकार्य का विचार न रखने वाला, चुग़ली खाने वाला, दूसरों का तिरस्कार होने की इच्छा रखने वाला होता है,

(४) पीत लेश्या वाला—दृढ़ मित्रता करने वाला, सत्य बोलने वाला, दान और शील में प्रवर्त रहने वाला, कार्य करने में प्रवीण, अन्य धर्मियों से द्वेष न रखने वाला, सम-दर्शी सेवने योग्य और न सेवने योग्य का विचार रखने वाला, कोमल परिणामी होता है,

(५) पद्म लेश्या वाला—त्यागी भद्र परिणामी उत्तम कार्य करने की प्रकृति वाला, सब प्रकार के उपद्रवों को सहने वाला साधु मुनियों में भक्ति रखने वाला, सत्य बोलने वाला, क्षमावान, उत्तम भावों वाला, दान देने में सबसे बढ़िया, प्रत्येक बात में चतुरता और सरलता रखने वाला होता है,

(६) शुक्ल लेश्या वाला—राग द्वेष और मोह रहित, शत्रु के भी दोष न देखने वाला, निदान न करने वाला, अर्थात आगामी के वास्ते किसी प्रकार की वांछा न करने वाला, हिंसा जनक कार्यों से अलग रहने वाला, मोक्ष मार्ग का साधन करने वाला, सब जीवों से समदर्शी, न किसी से द्वेष करने वाला और न किसी से अधिक प्रीति रखने वाला होता है,

इस प्रकार जो अधिकतर किसी एक एक लेश्या वाला होता है उसके यह मोटे मोटे चिन्ह वर्णन किये गये हैं, वैसे तो परिणामों के बदलने से समय समय सब ही जीवों की लेश्यायें बदलती रहती हैं, कभी मंद कषाय होती है, कभी तीव्र, इसही कारण कभी कोई लेश्या होती है, कभी कोई इन ऊपर के चिन्हों को ध्यान में रखकर विचारवानों को चाहिये कि अपनी आदतों और स्वभाव को ठीक करते २ अपने परिणामों को खोटी लेल्याओं से अच्छी लेश्याओं में लाते रहैं,

* पांचवां अध्याय *

अपनी आत्मा की शुद्धि करने वालों को सबसे पहले अपने असली स्वरूप की पहचान होने की ज़रूरत है और वह पहचान जीव अजीव में भेद करने अर्थाय दोनों का अलग २ स्वरूप जानने से ही होसक्ती है, फिर यह जानने

की ज़रूरत है कि खोटी करनी क्या है जिसका फल जीव को भोगना पड़ता है अथात कर्म किस प्रकार पैदा होता है अर्थात किस प्रकार कर्मों का आस्रव होता है और फिर किस प्रकार जीव से उसका सम्बंध होता है अर्थात जीवों की करनी किस प्रकार अपना फल देती है इसको कर्मबंध कहते हैं, फिर यह जानना ज़रूरी है कि कर्मों का उत्पन्न होना और जीव के साथ उनका सम्बंध होना कैसे रुक सक्ता है अर्थात आस्रव और बंध कैसे रोका जासक्ता है इसको संवर कहते हैं, फिर यह भी जानना ज़रूरी है कि पिछली करनी अर्थात बंधे हुवे कर्म कैसे नाश किये जासक्ते हैं इसको निर्जरा कहते हैं, इस प्रकार नवीन कर्मों की उत्पत्ति बंद होने और पिछले कर्मों का नाश होजाने से मोक्ष हो जाती है, आत्मा अपने अपनी स्वरूप में आजाती है, इस कारण उस मोक्ष अवस्था के जानने की भी ज़रूरत है, इस प्रकार जीव अजीव आस्रव बंध सम्वर निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के जानने की ज़रूरत है, इन सात तत्वों को जानलेने और उनपर पूरा पूरा श्रद्धान हो जाने से ही जीव अपनी आत्मा की शुद्धि में भले प्रकार लग सक्ता है, इन सात तत्त्वों को भले प्रकार जान, उसपर श्रद्धान करलेने को सम्यग्दर्शन और तव ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और फिर उसही के अनुसार आचरण करने को सम्यक् चारित्र कहते हैं, यह ही तीन रत्न कहलाते हैं जिनसे

मोक्ष कीप्राप्तिहोती है,

और सम्यकदर्शन सम्यकज्ञान अर्थात अपने स्वरूप की पहचान और उसका श्रद्धान सबसे पहले ज़रूरी है, इसके बाद ही सम्यक् चारित्र हो सक्ता है, सम्यक दर्शन और सम्यकज्ञान के हुवे विदून तो धर्म के रास्ते पर क़दम नहीं रखा जासक्ता है, जबतक हम यह नहीं जानते हैं कि हमको कहां जाना है और किस रास्ते से जाना है तब तो हमारा चलना उन्मत्त पुरुष की तरह ही जो उलटा पुलटा चाहे जिधर चल पड़ता है, इस वास्ते धर्म पर चलने का खयाल आते ही सबसे पहले हमको उस मार्ग की खोज करनी चाहिये जिस पर चलता है, अर्थात इन सात तत्वों का निश्चय करके अपने मार्ग को स्थिर करलेना ज़रूरी है, यह सब बात पक्षपात रहित होकर प्रमाण और नय के द्वारा हरएक बात की जांच करके सत्य असत्य की पहचान करने ही से हो सक्ती है, जैनधर्म की सबसे बड़ी खूबी यह ही है कि वह प्रत्येक बात को अच्छी तरह परीक्षा करके ग्रहण करने की ही शिक्षा देता है, बिना परीक्षा किये अंधे होकर श्रद्धान करलेने को तो जैन धर्म महामूढ़ता ही बताता है, सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान तो वस्तु स्वभाव की खोज करने से ही होसक्ता है जो भली प्रकार बुद्धि लड़ाकर तर्क करने से ही की जासक्ती है,

सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी

अर्थात अपनी आत्मा के असली स्वरूप की पहचान हो जाने पर भी जो जीव कषायों के फंदे में फंसे होने के कारण तुरंत ही अपने स्वरूप की प्राप्ति की कोशिश में नहीं लगसक्ते हैं सम्यक चारित्र धारण नहीं कर सक्ते हैं, अणुव्रत वा महाव्रत कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं, न अपनी इन्द्रियों पर ही क़ाबू पासक्ते हैं और न त्रस वा स्थावर जीवों की हिंसा करना ही छोड़ते हैं वह असंयमी वा अव्रती सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं, जैन धर्म का उपदेश पापी से पापीजीवों के वास्ते भीहै, इस कारण ऐसे भी जीव हो सक्ते हैं जो विषयों के अत्यन्त लोलुपी हों, वड़े धत्ती शरावी वा अफ़ीम आदि अन्य किसी नशे के अत्यन्त अभ्यासी हों, महा व्यसनी और दुराचारी हों, महा हिंसक और मांसाहारी हों, परन्तु किसी समय किसी कारण से उन को अपने स्वरूप की पहचान हो जावे, कोई सत्य उपदेश उन के हृदय में वैठ जावे जिससे उनको सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान की प्राप्ति हो जावे परन्तु वह तुरन्त ही अपनी पुरानी आदतों को वदलने और पापों को छोड़ने में समर्थ न हों, इसही अपेक्षा से यह कहा गया है कि ऐसा भी सम्यक दृष्टि हो सक्ता है जिसको न तो अपनी इन्द्रियों पर ही क़ावू हो और न उसने त्रस वा स्थावर जीवों की हिंसा का ही त्याग किया हो, ऐसा असंयमी यद्यपि तुरन्त ही किसी वात का त्यागी नहीं हुवा है, उसने कोई किसी प्रकार का संयम वा

व्रत वा चारित्र धारण नहीं किया है तो भी उसमें भी स्व-रूपाचरण चारित्र ज़रूर है अर्थात वह अपनी आत्मा के असली स्वरूप का अनुभवन ज़रूर कर रहा है और शीघ्र ही मोटे मोटे पापों को तो अवश्य ही त्याग देने वाला है जिससे वह धर्मा-त्माओं में बैठने योग्य तो हो जावे,

इस प्रकार यद्यपि असंयमी सम्यकदृष्टि की बाबत यह लिखा है कि उसको न तो किसी प्रकार इन्द्रियों का ही संयम होता है और न उस त्रस थावर की हिंसा का ही त्याग होता है तो भी वह श्रावक नहीं कहा जासक्ता है जबतक कि उसको मांस, शराब, शहद और गूलर आदि ऐसे फलों के खाने का त्याग नहीं होता है जिनमें से साक्षात त्रस जीव निकलते हैं, यह प्रारम्भिक त्याग ही श्रावकों के मूल गुण कहलाते हैं, सम्यग्दर्शन के आठ अंग वर्णन किये गयें हैं जो सम्यक श्रद्धान को सर्वांग पूर्ण कर देते हैं, यद्यपि प्रारम्भ में सम्यक्त इन अंगों के बिदून भी हो सक्ता है परन्तु पूर्णांग सम्यक्त तो इन आठों अंगों के होने से ही होता है जो इस प्रकार हैं, (१) अमूढ़ दृष्टि अर्थात बिना सोचे समझे जांचे तोले किसी बात का श्रद्धान नहीं करना, धर्म की प्रत्येक बात को हेतु और प्रमाण से ठीक समझकर ही मानना, मूढ़ अर्थात मूर्ख नहीं रहना और आंख मीच कर किसी भी बात को नहीं मानना, दुनिया में हज़ारों बातें ऐसी फैली हुई हैं जिनका

कोई भी सिर पैर नहीं होता है, मूढ़ लोग उनको बिना सोचे समझे मान लेते हैं, जैसाकि विधवा स्त्री अपने पति के साथ जीती जल मरने से फिर अपने पति को पालेती है और चाहे वह अपने पापों के कारण सीधा नरक में जाने वाला हो तो भी उसको स्वर्ग में लेजाती है और अनेक जन्मों तक उसके साथ सुख भोगती है, मरे हुवे के निमित्त से ब्राह्मणों को भोजन खिलाने से वह सब भोजन मरे हुवे को पहुंचजाता है और अन्य भी जो चीज़ ब्राह्मण को दी जाती है, यद्यपि वह उस ब्राह्मण के पास ही रहती है तो भी मरे हुवे को पहुंच गई मान ली जाती है, यदि कोई कन्या अपने पिता के घररजस्वला होजावे तो उसके पिता की सात पीढ़ी नरक को जाती है, परन्तु यदि कोई पिता अपनी १० बरस की कन्या को धन के लालच में सत्तर बरस के बुड्ढे से व्याह कर उस का सारा जीवन ही नष्ट करदे तो नरक में नहीं जाता है, ऐसी और भी हज़ारों बातें हैं जो मूढ़ लोग आंख मींच कर मान लेते हैं; परन्तु सम्यक्ती अंधा होकर नहीं मानता, चाहे कोई बात सारी ही दुनिया में मानी जारही हो तो भी जबतक वह बात उसकी जांच में ठीक नहीं निकलती है तबतक नहीं मानता है

इस ही प्रकार पूज्य देवताओं के मानने भी लोग अत्यंत मूढ़ रहते हैं, गंगा नदी में स्नान करने से जन्म २ के पाप दूर होते हैं ऐसा मान कर लाखों आदमी स्नान करने जाते

हैं, अन्य भी अनेक नदियों में स्नान करने से महा पुन्य प्राप्त होना मानते हैं, कोई कहीं एक पत्थर रखकर वा किसी प्रकार का अन्य कोई चिन्ह बनाकर उसको सुख दुख देने वाला देवता बतादेता है तो लाखों स्त्री पुरुष अपने कारजों की सिद्धि के वास्ते उसको पूजने लगजाते हैं, स्त्रियां घर की दीवार पर कुछ चित्र बनाकर उससे पुत्र मांगने लगजाती हैं, इस ही प्रकार अनेक रीति से देव मूढ़ता फैली हुई है, परन्तु सम्य-ग्दृष्टि ऐसी मूढ़ता नहीं करसक्ता है, विना जांचे अंधाधुंद श्रद्धा करलेने को तो वह महामूर्खता जानताहै, साधु सन्यासियों आदि के मानने में भी लोग बहुत बेपरवाही करते हैं, कोई कैसा ही महामूर्ख अज्ञानी भ्रष्टाचरीनी और दुराचारी क्यों न हो जहां उसने अपने में किसी प्रकार की अतिशय बताई और दुनिया के लोग उसको सिद्ध मानकर अपने सांसारीक कारजों की सिद्धि कराने के वास्ते उससे प्रार्थना करने लगे, परन्तु सम्यग्दृष्टि ऐसा मूढ़ नहीं होता है वह विदून अच्छी तरह परीक्षा किये किसी को साधु सन्यासी नहीं मान सक्ता है और न पूज सक्ता है, इसही कारण वह अमूढ़ दृष्टि होता है,

(२) दूसरा अंग निशांकित अर्थात शंका न करना है अपनी आत्मा के असली स्वरूप को अच्छी तरह पहचान कर उसपर दृढ़ विश्वास करने से ही सम्यग्दर्शन होता है, इस कारण उसको तो कुछ भी शंका नहीं रहती है, संसार के

लोग यह शंका करके कि शायद दूसरों का माना हुवा धर्म ही सच्चा हो, शायद उनका देवता ही शक्ति शाली और संसार के लोगों का कारज सिद्ध करने वाला हो, दुनिया-भर के देवताओं को और सब ही धर्मों के साधू संतों को मानने लग जाते हैं, उनसे झाड़ा फूंकी और जंतर मंतर कराते हैं और उनके बताये अनुसार क्रिया करने लगजाते हैं परन्तु सम्यक्ती इस तरह की शंका करके भटकता नहीं फिरता है, इसके सिवाय दुनिया के लोगों का श्रद्धान अनेक प्रकार के भय से भी विचलित हो जाता है, संसार में धर्म युद्ध बड़े जोरशोर से चलता रहा है यहांतक कि एक धर्म वाला अपने से विरुद्ध धर्म वाले को जान से मार डालना अपना मुख्य धर्म समझता रहा है और जान माल का भय देकर कमज़ोरों को अपने धर्म में शामिल करता रहा है, परन्तु सम्यग्दृष्टि इस प्रकार के भय से विचलित नहीं होता है इसके अतिरिक्त वह अपनी आत्मा को अजर अमर जानता है इस कारण वह मरने से नहीं डरता है और संसार की सब वस्तुओं को अपने से भिन्न जानता है इस कारण उनकी भी किसी प्रकार की हानि का कुछ भय नहीं करता है, वह भले प्रकार जानता है कि मैं तो अनादिकाल से तरह तरह की भारी आपत्तियां झेलता और तरह तरह के धक्के खाता हुवा चला आरहा हूं तब किस बात का भय करूं; किस बात की शंका और दुविधा

में पडूं, यदि कोई विपत्ति आवेगी तो वह तो झेलनी ही पड़ैगी डर करने से तो वह टल नहीं जावेगी तब क्यों भय करूं, भय करने से तो जीव उस आपत्ति को हटाने का उपाय करने से भी जाता रहता है इस कारण भय करना तो स्वयम ही एक प्रकार की आपत्ति है, ऐसा विचार सम्यक्ती का रहता है और यदि फिर भी उसको भय होता है तो उसको अपने पिछले कर्मों का उदय समझ उसके दबाने की ही कोशिश करता रहता है,

सम्यग्दृष्टि को तो किसी प्रकार का घमंड भी नहीं होता है, वह जानता है कि मैं तो अनादिकाल से अपने स्वरूप से भ्रष्ट होकर महा अज्ञानी और दीन हीन बना फिर रहा हूं, संसार में धक्के खा रहा हूं और महा कष्ट झेल रहा हूं, नीचातिनीच बन रहा हूं, तब घमंड किस बात का करूं, अगर कोई राजा किसी क़ैदखाने में क़ैद पड़ा हो, वहां वह नीच से नीच काम करता हुवा अगर कभी दो चार क़ैदियों का मेट बनादिया जावे, वा जेलखाने के क़ैदियों का पाखाना उठाना छुड़ाकर उससे रोटी पकाने का काम लिया जाने लगे तो क्या वह इस बात का घमंड कर सक्ता है कि मैं तो दूसरे क़ैदियों से ऊंचा हूं, नहीं, वह तो अपना राजपद याद करके शरम के मारे आंख भी नहीं करैगा, यह ही हाल सम्यग्दृष्टी का है जिसको अपनी असलियत का ज्ञानहो

गया है, वह किसी भी प्रकार का घमंड नहीं कर सक्ता है, वह तो नहीं मालूम कितनी वार विष्टा का कीड़ा वनचुका है और कितनी वार सूवर और कुत्ता होकर विष्टा खाता फिरा है तव वह अपने कुल वा जाति का क्या घमंड करसक्ता है, इसही प्रकार सम्यक्ती को तो अन्य भी किसी वात का घमंड नहीं हो सक्ता है और घमंड आता भी है तो उसको मान कषाय का उदय समझ कर उस अपने घमंड को दवाने की ही कोशिश करता है,

(३) सम्यग्दर्शन का तीसरा अंग निकांक्षित है, सम्यग्दृष्टी अपने किसी भी धर्म सेवन के द्वारा किसी भी सांसारीक कारज की सिद्धि नहीं चाहता है, वह तो जोकुछ भी धर्म कारज करता है अपनी आत्मा को कषायों के फंदे से छुड़ाने के वास्ते ही करता है, धर्म सेवन के द्वारा अपनी सांसारीक सिद्धि चाहना तो वह महापाप समझता है, जिससे उस का कोई सांसारीक कारज तो क्या सिद्ध होसक्ता है, उलटा विघ्न ही पड़ सक्ता है,

(४) चौथा अंग निर्विचिकित्सा है, जीव अजीव आदि संसार की सवही वस्तु पर्याय वदलती रहती हैं, कभी कोई अवस्था धारण करती हैं कभी कोई, उनमें से जो हमारे काम की हों उनको हम वर्तें और जो हानिकारक हों उनको अलग करदें परन्तु उनसे ग्लानि क्यों करैं, अनेक प्रकार के मेवा

मिष्टान फल और पक्वान जिनको मनुष्य बड़ी चाह से खाता है वह ही बीमारी की अवस्था में हानिकारक होजाते हैं इस कारण उनका खाना बन्द कर दिया जाता है परन्तु उनसे ग्लानि नहीं की जाती है जो विष्टा पेट में से निकलनेपर मकान से दूर फेंकदेने के योग्य होजाती है वह ही खेतों में पड़ कर वनस्पतियों का आहार बनती है और तरह तरह के फलों का रूप धारण करके मनुष्यों का आहार बनती है, तब किसी वस्तु से ग्लानि कैसे की जासक्ती है, इसही प्रकार जीव भी तरह तरह की पर्याय धारण करता है, कभी गधा बनता है और कभी घोड़ा कभी कीड़ा और कभी मकौड़ा तब ग्लानि किससे कीजावे, ग्लानी अर्थात नफ़रत तो महा पापियों से भी नहीं करनी चाहिये किन्तु उनका पाप छुड़ाकर उनको धर्मात्मा बनाने की ही कोशिश करनी चाहिये, जैन धर्म के तो महामुनियों ने भी महा मलिन दुर्गंधयुक्त चांडालों तक को उपदेश देकर जैनी बनाया है, जैन धर्म का तो यह सिद्धान्त है कि यदि चांडालके यहां जन्म लेकर भी कोई मनुष्य सम्यग्दर्शन ग्रहण करले तो वह भी पूजने और इज्ज़त करने योग्य होजाता है, यहांतक कि स्वर्गों के देवता भी उसकी बड़ाई करने लगजाते हैं, चांडाल के घर जो उसका जन्म हुवा है अर्थात चांडाल माता पिता के द्वारा जो उसका शरीर बना है वह तो सब ही का हाड़ मांस का होता है, तब किसी का

हाड़ मांस पवित्र और किसी का अपवित्र यह कैसे होसक्ता है, हाड़ मांस तो सबही के शरीर में भरा रहता है और ऊपर का चमड़ा धोकर मैल उतार डालने से ही शरीर पवित्र मानलिया जाता है, और जो शरीर के अन्दर जीव है वह भी सब ही का मिथ्यात्व आदि पाप कर्मों के कारण तो मलिन है और सम्यक्दर्शन आदि के धारण करलेने से पवित्र है तब किसी से ग्लानि क्यों कीजावे, सब ही को सम्यकज्ञान और सम्यक्दर्शन प्राप्त कराने की कोशिश क्यों न कीजावे, जब श्री तीर्थंकर भगवान की सभा में भी सब जीव जाते हैं और धर्म श्रवण कर जैनी बनकर आते हैं तब हम कैसे किसी से ग्लानि करसक्ते हैं, हमारे वस्त्र और हमारा शरीर भी तो मलिनता लगने से अपवित्र हो जाता है, और छूने योग्य नहीं रहता है और धोकर साफ़ करलेने से पवित्र हो जाता है ऐसा ही सब का हो जाता है, इस प्रकार जैन धर्म तो बहुत ही उदार है और मनुष्यों में आपस में एक दूसरे से ग्लानि अर्थात द्वेष करने के व्यवहार को पाप समझता है,

(५) पांचवां अंग उपगूहन है जिसका अभिप्राय यह है कि किसी से कोई दोष वा पाप कार्य हो जाने पर सम्यक्-दृष्टि पुरुष उसके पाप को उजागर करके उसको निर्लज्ज और ढीठ नहीं बनादेगा किन्तु उसके दोष को प्रगट न करके

उसको समझावेगा कि भूल चूक तो सबही से होजाती है, जो हुवा सो हुवा अब तुम उसका ख़याल मत करो किन्तु आगे को पूरा २ ख़याल रक्खो जिससे फिर ऐसी भूल न होने पावे,

(६) छटा अंग स्थितिकरण है—जो कोई किसी कारण से धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, नीचे गिर जाता है और धर्म से विमुख हो जाता है वा भ्रष्ट होने वाला होता है उसको सम्यग्दृष्टि समझा बुझाकर, तसल्ली देकर, हिम्मत बंधाकर और सर्व प्रकार की सहायता देकर फिर धर्म में लगादेता है, गिरे हुवे को फिर ऊपर चढ़ालेता है,

(७) सातवां अंग वात्सल्य है—सम्यग्दृष्टि सबही धर्मात्माजनों से सगे भाई जैसी प्रीति करता है उनको अपना भाई समझता है,

(८) आठवां अंग प्रभावना है—सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञान ध्यान और उत्तम चारित्र आदि के द्वारा सर्व साधारण के हृदय में धर्म का प्रभाव जमाता है,

इस प्रकार अव्रती सम्यग्दृष्टि के परिणाम भी धर्म में ही भीगे रहते हैं इसही कारण अणुव्रत वा मह[illegible]त के न होने पर भी वह मरकर नरक या तिर्यंच गति नहीं [illegible]ता है, नीच कुल में जन्म नहीं लेता है, नपुंसक या स्त्री [illegible] ता है, कुरूप, अल्प आयु और दरिद्री भी नहीं होता है, [illegible]ान, प्रतापी,

सूरवीर, विद्यावान, यशस्वी, विजयी महाविभव और सम्पदा वाला ही होता है, मनुष्यों में सरदार होता है या देवों में इन्द्र आदिक होता है,

॥ छटा अध्याय ॥

जो जीव थोड़ा थोड़ा व्रत धारण करते हैं वह अणुव्रती वा देश व्रती कहलाते हैं, जैन शास्त्रकारों ने उनके ११ दर्जे क़ायम किये हैं जो ११ प्रतिमा कहलाती हैं (१) दर्शन (२) वृत (३) सामायिक (४) प्रोपधोपवास (५) सचित त्याग (६) रात्रि भुक्त त्याग (७) ब्रह्मचर्य (८) आरंभ त्याग (९) परिग्रह त्याग (१०) अनुमति त्याग (११) उदिष्ट त्याग, यह ११ प्रतिमा वा दर्जे हैं। दर्शन प्रतिमा वाला हिंसा चोरी झूठ कुशील और परिग्रह इन पांचों पापों को कुछ कुछ त्याग कर व्रती श्रावक तो नहीं वनता है परन्तु उनके त्यागने का अभ्यास ज़रूर करता है और इनमें से कोई कोई अणुव्रत धारण भी करलेता है, परन्तु जवतक पांचों अणुव्रत धारण नहीं होते हैं तवतक वह पहली प्रतिमा वाला ही रहता है, तो भी इस पहली प्रतिमा में वह जूवा खेलना, चोरी करना, मांस खाना, शराव पीना, रंडी वाज़ी करना, पर स्त्री सेवन करना और शिकार खेलना इन सात प्रकार के कुव्यसनों को तो ज़रूर ही त्याग देता है

दूसरी व्रत प्रतिमा में हिंसा चोरी झूठ कुशील और

परिग्रह इन पांच पापों का मोटे रूप त्याग होता है अर्थात त्रस और स्थावर दो प्रकार के जीवों में से वह चलने फिरने वाले त्रस जीवों की हिंसा का तो त्याग करता है और वनस्पति आदि न चलने फिरने वाले एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करता है, चोरी और झूठ का त्याग भी मन वचन काय से ऐसा नहीं करता है जैसाकि मुनियों के होता है किन्तु जिसको संसार में चोरी करना और झूठ बोलना कहते हैं उतना त्याग ज़रूर होता है, इसही प्रकार कामभोग का सर्वथा त्याग करके वह ब्रह्मचारी नहीं बनता है किन्तु अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य किसी भी स्त्री की तरफ़ खोटी निगाह नहीं करता है, अपनी स्त्री के साथ भी वह कामभोग में अधिक आसक्त नहीं होता है, परिग्रह अर्थात संसार की वस्तुवों से ममत्व भी वह सर्वथा नहीं त्यागता है किन्तु परिमाण करलेता है कि इतनी वस्तु से अधिक नहीं रखूंगा, इस प्रकार वह अपनी तृष्णा को घटाता है, त्रस जीवों की हिंसा के त्याग में भी वह केवल संकल्पी हिंसा का त्याग करता है, इरादा करके किसी त्रस जीव को नहीं मारता है, किन्तु किसी जीव के मारने का इरादा किये विदून भी गृहस्थ के अनेक कार्य करते हुवे जो जीव मरते हैं उनकी हिंसा का वह त्यागी नहीं होता है, हिंसा करना जीव को जान से मारडालना ही नहीं है किन्तु किसी प्रकार का दुख पहुंचाना

भी हिंसा है, इसही प्रकार अपने बेटा बेटी, बूढ़े माँ बाप, वा भाई बहन भतीजे आदि जो भी अपने आश्रय हों उनकी पालना में कमी करता और उनको दुखी रखना भी हिंसा है, अपनी कन्या को किसी अयोग्य वर के साथ व्याहदेना हिंसा है गाय घोड़ा आदि अपने पास जो पशु हों उनपर अधिक बोझ लादना वा अच्छी तरह खाने को न देना, बीमार और ज़ख़मी से भी काम लेना हिंसा है ऐसी हिंसा वह नहीं करैगा परन्तु वह गृहस्थी है संसार का त्यागी नहीं है इस कारण जान माल की रक्षा के वास्ते वह सर्व ही प्रकार उपाय करैगा और यदि विदून किसी जीव के मारे रक्षा नहीं हो सक्ती है तो मारने से न चूकेगा, इसको विद्वेषी हिंसा कहते हैं, इसका वह त्यागी नहीं है, इसही कारण इस प्रतिमा के धारी जैन राजाओंने अपने राज्य की रक्षा के वास्ते बड़े २ युद्ध किये हैं जिनमें लाखों मनुष्यों की हत्या हो गई है, अचौर्य अणुव्रत में वह चोरी का माल भी नहीं लेगा, चोरों को शरण भी नहीं देगा, बाट तराज़ू आदि अपने तोलने की चीज़ भी वह कमती बढ़ती नहीं रखेगा, खरे माल में खोटा माल मिलाकर नहीं बेचेगा, राज्य के क़ानून का उलंघन भी नहीं करैगा, राज्य के महसूल की चोरी भी नहीं करैगा, सत्य व्रत में वह किसी को ठगने के वास्ते धोखा फ़रेब नहीं देगा, जालसाज़ी नहीं करैगा, झूठा हिसाब नहीं बना-

वेगा, किसी की धरोहर नहीं मारेगा, परिग्रह परिमाण में जितना भी परिमाण किया है उसही में संतोष रखेगा, मन को इधर उधर नहीं भटकावेगा और न आगामी के वास्ते निदान करैगा, अर्थात अगले जन्म के वास्ते भी वह इच्छा नहीं करैगा, ममत्व को कम करने के वास्ते ही तो उसने परिग्रह का परिमाण किया है इस कारण वह तो ऐसी ही तरह रहैगा जिससे संसार की वस्तुओं से उसका ममत्व कमतर २ ही होता चलाजावे, स्वदार संतोष व्रत में अर्थात अपनी व्याहता स्त्री में ही संतोष रखने में वह रंडी के नाच गाने में शामिल नहीं होगा, गुदा मैथुन वा हस्त मैथुन नहीं करैगा, अशलील स्वांग तमाशे नहीं देखेगा, अशलील गालियां नहीं गावेगा, अशलील कहानियां न पढ़ैगा न सुनेगा और अपनी स्त्री साथ भी कामभोग में अति आसक्त नहीं होगा, यह ही सब बातें स्त्रियों से भी लागू होंगी, वह भी अपने व्याहे हुवे पति में ही संतोष रखेगी, इसही प्रकार अन्य भी सब अशलील बातों से परहेज़ करैगी, अशलील गाना तो वह हर्गिज़ भी नहीं गावेगी, जैन धर्म में इस विषय में पुरुष और स्त्रियों के वास्ते अलग २ नियम नहीं बताये गये हैं, पुरुषों को कामभोग के कुछ अधिक अधिकार नहीं दिये गये हैं किन्तु जैन धर्म तो सबसे पहले पुरुषों को ही उपदेश देकर उनको हि स्वस्त्री व्रती बनाकर स्त्रियों को भी उसही प्रकार पतिव्रता रहने

का उपदेश दिया गया है, जैन धर्म में स्त्री का अपने मृतक पति के साथ जीती जल मरने का भी उपदेश नहीं है किन्तु महामोह के कारण ऐसे कृत्य को तो महापाप ही बताया है,

इन पाचों अणुव्रतों को अच्छी तरह पालने लगजाने पर इनको कुछ अधिक बढ़ाने के वास्ते दिग्व्रत देश व्रत और अनर्थदंड व्रत यह तीन गुण व्रत अर्थात अणुव्रतों को बढ़ाने वाले वृत ग्रहण किये जाते हैं (१) दिग्वृत अर्थात संसार से मोह घटाने के वास्ते उसने परिग्रह का परिमाण तो कर ही रखा है अब वह यह भी नियम करलेता है कि अमुक देश या नदी नाले आदि से बाहर नहीं जाऊंगा और न वहां की किसी वस्तु से कोई सम्बंध रखूंगा, (२) देश वृत अर्थात दिग्वृत में तो जीवनभर के लिये त्याग होता है बीच २ में वह अपनी ज़रूरतों के अनुसार कुछ कुछ दिनों के वास्ते दिग्वृत के छेत्र को और भी छोटा करदेता है जिसके द्वारा उसका ममत्व और भी ज़्यादा घट जाता है (३) अनर्थ दंड वृत अर्थात जिन बातों के करने से अपना कोई सांसारीक कारज भी सिद्ध नहीं होता है उन बिल्कुल ही व्यर्थ के पापों को त्याग देना, जैसे पापों की बातों का ध्यान न करना ध्यान करने से उन वस्तुओं की प्राप्ति तो होती नहीं किन्तु पाप अवश्य बंध जाता है, किसी को लड़ने भिड़ने बेईमानी करने आदि पाप कर्म की सलाह देनी, ऐसी आदत आम

लोगों को हुवा करती है और वह रस्ते चलतों को भी उनकी दुख कथा सुनकर ऐसो सलाह देने लगजाते हैं, किसी कन्या के साथ किसी बुड्ढे के व्याह में शामिल होकर वह बेमतलब का पाप अपने ज़िम्मे नहीं लेता है, अन्य भी बेमतलब के पाप के काम नहीं करता है, पापरूप कथा कहानी कहना सुनना, फ़ज़ूल किसी की बुराई भलाई करना, किसी का बुरा चिन्तवन करना, बेहूदा बकना, ज़रूरत से ज़्यादा फ़ज़ूल चीज़ों का इकट्ठा करना, ज़रूरत से ज़्यादा काम करना, व्याह शादी में फ़ज़ूल द्रव्य लुटाना और भी इसही प्रकार के व्यर्थ के काम वह नहीं करता है, इस प्रकार इन तीन गुण-व्रतों के द्वारा अपने अणुव्रतों को बढाता हुवा वह फिर कुछ कुछ मुनि धर्म का भी अभ्यास करने की तरफ़ झुकता है इसही को शिक्षा व्रत कहते हैं जो चार हैं (१) भोगोपभोग परिमाण वृत अर्थात अपनी इन्द्रियों के भोग को घटाना, इस व्रत में जिन जिन बातों को वह अधिक पाप उपजाने वाली समझता है उनको छोड़ देता है, जिन २ वनस्पतियों में अनन्त जीव होते हैं जैसे कोई कोई कन्द और मूल उनका खाना भी इसही व्रत में त्यागा जाता है, हरी वनस्पति खाने का त्याग भी इसही व्रत में हो सक्ता है, (२) सामायक— मन वचन काय की क्रिया को रोककर अपनी आत्मा में ध्यान लगाने को सामायक करते हैं, अब वह कुछ कुछ सामायक

करने के भी योग्य हो जाता है और सुवह शाम और दोपहर को एकान्त स्थान में बैठकर इसका अभ्यास करने लगजाता है, (३) प्रोषधोपवास अर्थात प्रति सप्ताह एक दिन अर्थात अष्टमी और चौदश को सांसारीक सब ही कार्य छोड़ कर और खाने पीने न्हाने धोने और शृंगार करने आदि का भी त्याग करके एकमात्र धर्म सेवन में ही लगजाना, यह उप-वास ४८ घंटे का होता है अर्थात सप्तमी और तिरोदशी के दोपहर से लेकर नवमी और पंदरस के दोपहर तक होता है परन्तु इस प्रतिमा वाला अभ्यासमात्र करता है इस कारण कमती समय के वास्ते ही करता है, जितने समय तक वह संसार कारजों से विरक्त रहसके उतने ही समय के लिये करता है, (४) अतिथि संविभाग अर्थात साधु वा मुनि आदि आकस्मिक आये हुवे धर्मात्मा को अपने वास्ते बनाये हुवे भोजन में से भोजन देना, यह भक्ति दान है जो सच्चे धर्मा-त्मापने का गुण देखकर ही दिया जाता है, इसमें यह खयाल नहीं होना चाहिये कि मैं ही साधु वा मुनि की सेवा कर पाऊं, मेरे ही घर से उनको आहार मिले जिससे मुझ को ही पुन्य बंध हो अन्य कोई दूसरा न देसके, ऐसा करना धर्म भक्ति नहीं है किन्तु खुदगर्ज़ी है, ऐसी खुदगर्ज़ी से तो उलटा पाप का बंध होता है, उसको तो यह ही खयाल रहना चाहिये कि धर्मात्माओं की पूरी सेवा हो जावे, उनको किसी

प्रकार की तकलीफ़ न होने पावे, वह सेवा चाहे अपने से हो चाहे पराये से इसका कुछ अधिक विचार न किया जावे, इस प्रकार यह सब १२ व्रत धारण करने से ही दूसरी प्रतिमा पूर्ण होती है,

(३) तीसरी सामायक प्रतिमा है—इस प्रतिमा में वह तीन वक्त क़ायदे के अनुसार सामायक करता है, (४) चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है–इस प्रतिमा में वह पूरे ४८ घंटे का उपवास करता है (५) पांचवीं सचित त्याग प्रतिमा है–इस में वह हरी वनस्पति आदि उन सब वस्तुओं के खाने पीने का त्याग करदेता है जिसमें त्रस वा स्थांवर किसी भी प्रकार का जीव हो, (६) छटीं रात्रि भोजनत्याग प्रतिमा है–इस में वह रात को सब प्रकार का खाना पीना त्याग देता है और दिन में स्त्री भोग भी छोड़ देता है (७) सातवीं ब्रह्म-चर्य प्रतिमा है जिसमें वह अपनी स्त्री से भी कामभोग का त्याग करदेता है (८) आठवीं आरंभ त्याग पूतिमा है जिस में वह आजीविका करना विल्कुल त्याग देता है यह काम वह अपने वेटे पोते आदि को सौंपकर बेफ़िकर होजाता है, (९) नवीं परिग्रह त्याग पूतिमा है, इसमें वह अपनी सब धन सम्पत्ति अपने बेटे पोते आदि को सौंपकर स्वच्छंद होजाता है, अपने पास एक पैसा भी नहीं रखता है (१०) दसवीं पूतिमा अनुमति त्याग है, इसमें वह सांसारीक कारजों में

सलाह देना भी छोड़ देता है (११) ग्यारहवीं प्रतिमा उद्दिष्टत्याग है इसमें वह अपने निमित्त बनाया भोजन भी नहीं खाता है, गृहस्थियों ने अपने वास्ते जो भोजन बनाया हो उसही में से भिक्षा भोजन करता है, क्षुल्लक और ऐल्लक इसके दो भेद हैं, ऐल्लक लिंगोटी मात्र रखता है अन्य सब क्रिया मुनियों के समान करता है, जब लिंगोटी भी छूट जाती है तो महाव्रती साधु वा मुनि होजाता है, क्षुल्लक सिर्फ खंड वस्त्र रखता है शेष क्रियांए उत्तम ब्रह्मचारीवत होती हैं त्यागी स्त्रियां आर्यिका कहलाती हैं और अपना अंग ढकने के लिये १ श्वेत साड़ी रखती हैं, जब अणुव्रती गृहस्थी के मरने का समय आजाता है अर्थात जब उसको मरने का पूर्ण निश्चय होजाता है तब वह हर्ष के साथ मरने के लिये तय्यार हो जाता है, संसार की सब ही वस्तुओं से मोह त्याग कर महाव्रती के समान हो जाता है, सब से क्षमा मांगता है और स्वयम भी सब के वास्ते क्षमाभाव धारण करता है, उस समय जो भी शारीरिक पीड़ा उसको होती है उसको शान्ति के साथ सहन करता है और धर्म ध्यान में अपना समय व्यतीत करता हुआ शांतभावों के साथ शरीर त्याग देता है,

॥ सातवां अध्याय ॥

गृहस्थी धर्मात्मओं की भावना अर्थात वारवार चिन्तवन चार प्रकार का होता है (१) मैत्री अर्थात सब जीवों से

प्रेमभाव, सब का भला चाहना (२) प्रमोद अर्थात गुणवानों और धर्मात्माओं की याद आने से हर्षित होना, उनकी प्रशंसा करना, खुश होना, (३) करुणा अर्थात दुखी जीवों पर दया करना, चाहे कोई मिथ्यात्वी हो वा सम्यक्ती पापी हो वा धर्मात्मा सबही पर दया करना सब ही के दुख दूर करने की भावना रखना (४) माध्यस्त अर्थात जो महापापी जीव हैं, समझाने से भी पाप क्रियाओं को नहीं छोड़ते हैं उनकी तरफ मध्यस्तभाव रखना न राग न द्वेष न मित्रता न वैर, लाचारी समझकर उनकी तरफ़ से खयाल ही हटालेना, बहुतसे लोग महापापी और हिंसक जीवों का नाश हो जाने की भावना किया करते हैं और बहुतसे उनका विध्वंस कर देना ही धर्म समझते हैं परन्तु जैनमत ऐसी क्रिया को महा पाप बताता है और ऐसे जीवों की तरफ़ मध्यस्तभाव रखने का ही उपदेश देता है, गृहस्थियों के वास्ते दान करने का भी उपदेश है, क्षुल्लक ऐल्लक और साधुवों को तो वह भक्ति से दान देता है और ऐसी ही चीज़ का दान देता है जो उनके धर्म साधन में साधक हो बाधक न हो, गृहस्थी धर्मात्माओं की वह धर्म प्रेम से सर्व प्रकार की सहायता करता है और मामूली दुखियाओं की वह करुणा करके मदद करता है, चाहे कोई मिथ्यात्वी हो वा पापी वह उसको दुखी देख कर उसका दुख दूर करने की कोशिश करता है, इस प्रकार

वह सब का भला चाहता है और सब ही को दान देता है, परन्तु आंख मीचकर हरएक मांगने वाले को देना वह ठीक नहीं समझता है, बेज़रूरत द्रव्य लुटाना और जो मांगे उस को देकर लोगों को भीख मांगने की आदत डालना और बेकार बनाना तो वह अधर्म और पाप समझता है, देता भी इस ही रीति से है जिससे लोगों की आदत न बिगड़े, वह अपने नाम के लिये नहीं देता है और न सिरफ़ पुन्य प्राप्ति के वास्ते ही देता है बल्कि धर्मात्माओं को तो धर्म अनुराग से प्रेरित होकर उनकी ज़रूरत पूरा करने के लिये देता है जिससे वह बेफ़िकर हो कर अपने धर्म साधन में लगे रहैं और दुखिया पर दया उत्पन्न होकर उसका दुख दूर करने के वास्ते देता है, अपने पुन्य प्राप्ति के वास्ते नहीं देता है परन्तु इस प्रकार देने और सहायता करने से पुन्य प्राप्ति हो ही जाती है और जो पुन्य प्राप्ति के वास्ते ही देता है उसको पुन्य प्राप्ति नहीं होती है,

संसार के जीव इष्टवियोग अर्थात अपनी प्यारी चीज़ के बिछड़जाने का, अनिष्ट संयोग अर्थात जो चीज़ पसंद नहीं है उसका संयोग हो जाने का बीमारी आदिक अनेक दुखों का, आगामी को इच्छित वस्तु मिलने का चिन्तन करके इनही बातों का ध्यान करके दुख मानते रहा करते हैं, इसको आर्तध्यान कहते हैं, इसही प्रकार पापकर्मों का ध्यान

करके आनन्दित हुवा करते हैं इसको रुद्रध्यान कहते हैं, इन दोनों प्रकार के ध्यानों से महापाप होता है, श्रावक इन दोनों प्रकार के ध्यानों से बचने की कोशिश करता है और धर्म ध्यान का ही अभ्यास करता है, जैसाकि संसार के जीव पापों में फंसे हुवे हैं वह किस प्रकार अधर्म को छोड़ कर धर्म में लग सक्ते हैं, धर्म का स्वरूप क्या है, आत्मा का स्वरूप क्या है, किस प्रकार जीवों का भला किया जा सक्ता है, अपनी शुद्धि कैसे होसक्ती है इत्यादिक प्रकार धर्म ध्यान का ही अभ्यास करता है, साधु और मुनि धर्म ध्यान भी करते हैं और ऊंचे दर्जे पर जाकर शुक्लध्यान भी करते हैं जो अपनी आत्मा का ही ध्यान करना है,

महाव्रती साधुवों की भावना अर्थात बार बार का चितवन भी ऐसा ही होता है जिससे अधिक २ वैराग्य की प्राप्ति हो और वैराग्य अधिक २ दृढ़ हो जैसाकि (१) अनित्य भावना अर्थात संसार की सब वस्तु पर्याय पलटती हैं कोई भी नित्य रहने वाली नहीं है तब इन से नेह लगाना तो मूर्खता ही है (२) अशरण भावना अर्थात मरने से कोई भी किसी को नहीं बचा सक्ता है इसही प्रकार कर्मों का फल भोगने से भी कोई किसी को नहीं बचा सक्ता है कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है जिसकी शरण ली जावे (३) संसार भावना अर्थात दिन से रात और रात से दिन होती रहती

है, इसही प्रकार सब ही बातों का चक्कर चल रहा है इस कारण इस संसार से कौन बुद्धिमान मन लगा सक्ता है (४) एकत्व भावना अर्थात प्रत्येक जीव अकेला है, अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है, कोई भी साथ नहीं देता है, अपने कर्मों का फल भी इसको अकेले ही भोगना पड़ता है तब क्यों किसी से स्नेह किया जावे (५) अन्यत्व भावना अर्थात संसार की सब ही वस्तु मुझ से भिन्न हैं तब मैं उन से क्यों नेह लगाऊं, (६) अशुचि अर्थात यह मेरी देह हाड़ मांस आदिक अशुचि वस्तुवों का पींजरा है जिसमें मैं बन्द पड़ा हूं, मुझे इस शरीर से नेह नहीं करना चाहिये किन्तु इससे छुटकारा पाने की ही कोशिश करना चाहिये, (७) आस्रव अर्थात कर्म किस प्रकार पैदा होकर जीव को नाच नचाते हैं इसका ध्यान करना (८) संवर अर्थात कर्मों का पैदा होना किस तरह रोका जा सक्ता है इस ध्यान में लगना (९) निजरा अर्थात किन उपायों से पिछले बंधे कर्म शीघ्र ही समाप्त हो सक्ते हैं इसका विचार करना (१०) लोक अर्थात दुनिया का विचार करना कि इसमें सर्वत्र दुख ही दुख भरा है (११) बोधिदुर्लभ अर्थात संसार के जीव अनेक पर्यायों को पाते हुवे महा अज्ञानी बने फिरते हैं, मनुष्य जन्म पाना और अपनी आत्मा का बोध हो जाना बहुत ही दुर्लभ है, इस वास्ते बोध हो जाने पर अपनी आत्मा की शुद्धि करने

से नहीं चूकना चाहिये, चूके तो मालुम नहीं फिर कब यह बुद्धि प्राप्त हो (१२) धर्म अर्थात धर्म मार्ग का ध्यान करना जिसके द्वारा निराकुल मोक्ष मिलता है, इस प्रकार की भावनाओं से वैराग्य की उत्पत्ति होती है और वैराग्य में दृढ़ता आती है इस कारण साधु ऐसी ही बातों का विचार करते रहा करते हैं।

तप करने से कर्मों का पैदा होना रुकता है और पिछले कर्मों की निर्जरा होती है इस कारण महाव्रती साधु १२ प्रकार का तप भी करते रहते हैं (१) अनशन अर्थात संयम की वृद्धि रागादिक का नाश कर्मों की निर्जरा, ध्यान की प्राप्ति और शास्त्र के अध्ययन में लगे रहने के अर्थ आहार कषाय और इन्द्रियों के विषय का त्याग करना (२) अवमौदर्य अर्थात संयम की वृद्धि निद्रा और आलस्य का नाश वात-पित्त आदि का दबना, संतोष का होना और स्वाध्याय आदि में स्थिरता रहने के अर्थ थोड़ा आहार लेना पेट भर कर न खाना (३) वृत्तिप्रसंख्यान अर्थात आशा और इच्छाओं को दूर करने के वास्ते आहार में कोई ऐसी शर्त लगा देना कि ऐसी बात होगी तो आहार लेंगे (४) रस परित्याग अर्थात इन्द्रियों के उद्धतपने को रोकने, निद्रा को जीतने, स्वाध्याय में मन लगा रहने आदि के अर्थ घृतादि पुष्टिकारक और स्वादरूप रसों का त्याग (५) विविक्त शय्या-

ान अर्थात एकान्त शून्यस्थान में रहना जिससे स्वाध्याय में बाधा न आवे ब्रह्मचर्य पले, ध्यान की सिद्धि हो, (६) काया क्लेश अर्थात सर्दी गर्मी और अन्य सर्व प्रकार का दुख सहने का अभ्यास डालने के अर्थ और सुख की इच्छा मेटने के अर्थ देह को कष्ट देना (७) प्रायश्चित्त अर्थात प्रमाद से किसी प्रकार का दोष होजाने पर दंड लेना जिस से फिर ऐसा दोष न होवे (८) विनय अर्थात अपने से ऊंचे दर्जे के मुनियों का विनय करना (९) वैयावृत्य अर्थात रोगादि आजाने पर दूसरे मुनियों की टहल करना (१०) स्वाध्याय अर्थात आलस्य रहित ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना (११) व्युत्सर्ग अर्थात किसी वस्तु में ममत्व का न होना यह पुस्तक वा पीछी कमंडल, तो मेरा है दूसरे ने क्यों लेलिया ऐसा भाव न करना (१२) ध्यान अर्थात मन की चंचलता रोक कर एक तरफ़ चित्त लगाना, यह १२ प्रकार के तप हैं जो साधु मुनि करते रहते हैं, महाव्रती साधु सर्व प्रकार की परीषहों अर्थात तकलीफ़ों को जो जंगल में अकेले नग्न अवस्था में रहने से वा अन्य कारणों से हों, दुष्ट जन्तुओं वा पापी मनुष्यों के कारण जो संकट उनको सहना पड़े इत्यादिक सब ही परीषहों को वह बिना किसी प्रकार की आकुलता के सहन करतेहैं किसी प्रकार का भी क्लेश वा दुख अपने हृदय में नहीं लाते हैं और न उनके दूर करने

की कोशिश ही करते हैं किन्तु वीर पुरुष की तरह सब प्रकार की मुसीबतों को झेलते हुवे अपनी आत्म शुद्धि में ही लगे रहते हैं,

महाव्रती साधुओं अर्थात पूर्णरूप से धर्म का साधन करने वालों के दसलक्षण बताये गये हैं जो धर्म के दस लक्षण कहेजाते हैं, यह सब लक्षण मुनियों में होते हैं (१) क्षमा अर्थात क्रोध का कारण होते हुवे भी क्रोध न करना (२) मार्दव अर्थात मान का न होना (३) आर्यव अर्थात सरल परिणामी होना किसी भी प्रकार के मायाचार का न होना (४) सत्य अर्थात हितमित रूप ऐसे वचन बोलना जिस से किसी की कुछ हानि न होती हो (५) शौच अर्थात लोभ का न होना हृदय साफ़ और पवित्र होना (६) संयम अर्थात व्रत नियम के द्वारा विषय कषायों पर क़ाबू रखना (७) तप अर्थात अपनी आत्म शुद्धि के वास्ते १२ प्रकार का तप करना (८) त्याग अर्थात संसार की वस्तुओं से मोह का त्याग होना (९) आकिंचन्य अर्थात अपनी आत्मा के सिवाय अन्य सब की तरफ़ से वैराग्य रूप होना (१०) ब्रह्मचर्य अर्थात कामभोग से सर्वथा विरक्ति होकर अपनी आत्मा में ही चर्या करना उसही में मग्न रहना, जैन मुनि शरीर की स्थिति बनी रहने के वास्ते ही भोजन लेते हैं नकि उसको पुष्ट करने के वास्ते और शरीर की स्थिति भी इस ही वास्ते

वनाये रखनी चाहते हैं कि उससे धर्म साधन होता रहै, भोजन के वास्ते वह कोई किसी भी प्रकार का आरंभ नहीं करते हैं और न भिक्षा मांगते हैं न याचना करते हैं, वह तो जव उनको भोजन लेना होता है तो वस्ती में फिर आते हैं, तव कोई पुरुष अपने मकान के दरवाज़े पर खड़ा हुवा उन को भोजन के वास्ते वुलालेता है तो भोजन लेलेते हैं नहीं तो फेरी देकर वापस चले आते हैं, यदि कोई मुनि संयम से गिर जाता है भ्रष्ट हो जाता है मुनि नहीं रहता है तव भी उसको उचित प्रायश्चित अर्थात ऐसा दंड देकर जिससे वह फिर इस प्रकार भ्रष्ट न होवे उसको फिर संयम में लगादिया जाता है, मुनि वना लिया जाता है इसको छेदोपस्थापन कहते हैं, महाव्रती मुनि अपने मन वचन और काय पर पूरा २ क़ाबू रखने की कोशिश करते हैं इसको गुप्ति कहते हैं और अपने से किसी जीव का हिंसा न हो जाय इस वास्ते दो गज़ आगे ज़मीन देखकर चलते हैं इस नियम को ईर्यासमिति कहते हैं (२) वोलचाल में भी वड़ी सावधानी रखते हैं जिससे किसी का नुक़सान न होवे इसको भाषासमिति कहते हैं (३) खूव सावधानी के साथ देखभाल कर खाना खाते हैं यह एशनासमिति है (४) प्रत्येक वस्तु को अच्छी तरह देख भाल कर उठाना रखना जिससे किसी जीव की हिंसा नहे जाय आदाननिक्षेपन समिति है, (५) इसही प्रकार मल मूत्र

भी बड़ी इहतियात से ऐसे स्थान में करते हैं जहां कोई जीव नहो यह उत्सर्ग समिति है। इस प्रकार ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति मिलकर १३ प्रकार का चारित्र मुनियों का कहा जाता है ॥

॥ आठवां अध्याय ॥

मुनि लोग भोजनके वास्ते भी जाते आते हैं गृहस्थियों से बात चीत भी करते हैं उन को उपदेश भी देते हैं, एक देश से दूसरे देश में विहारभी करते हैं, मल मूत्र आदिभी करते हैं अन्य भी अनेक क्रियाओं में लगते हैं हर समय अपनी आत्मामें ही लीननहीं रहते हैं इस ही वास्ते उन की इस अवस्था को प्रमत्त अवस्था अर्थात प्रमाद की अवस्था कहते हैं, और जितनी देर वह अपनी आत्मा में लीन होते हैं उसको अप्रमत्त अवस्था कहते हैं, यह अप्रमत्त अवस्था बहुत थोड़ी देरही रहसक्ती है, फिर प्रमत्त अवस्थाही हो जाती है, इस प्रकार कभी प्रमत्त और कभी अप्रमत्त अवस्था होती रहती है, फिर जब उन्नति करते करते अप्रमत्त अवस्था में आत्मा की विशुद्धता कई गुणी बढ़नी शुरु हो जाती है तो उस को गुण श्रेणी चढ़ना कहते हैं, यह गुण श्रेणी चढ़नातीन प्रकार का होता है (१) अधःकरण (२) अपूर्वकरण (३) अनिवृत्तिकरण, इस में अधः करण उन्नति तो अप्रमत्त अव स्था में ही होती है और अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण

अवस्था अलग २ मानी गई है परन्तु यह सब अवस्था अन्तर महूर्त में ही हो जाती हैं, गुण श्रेणी विशुद्धि दो प्रकार की होती हैं, एक तो कषायों को दबाते हुवे अधिक २ विशुद्धि करते चले जाना, इस को उपशम श्रेणी चढ़ना कहते हैं दूसरी कषायों को सर्वथा नाश करते हुवे उन्नतिकरना इस को क्षायकश्रेणी चढ़ना कहते हैं . उपशम श्रेणीवाले की कषायें कुछ देर के लिये ही दबने पाती हैं फिर अन्तर महूर्त के अंदर अंदर ही उभर आती हैं परन्तु क्षायक श्रेणी वाला कषायों को बिल्कुल क्षय करता हुवा ही उन्नति करता है इस कारण उस की कषाय नहीं उभरती हैं, वह तो उन्नति करता ही चला जाता है, इस प्रकार गुण श्रेणी द्वारा कषायों वा नो कषायों को उपशम वा क्षय करते हुवे जब एक संज्वलन-लोभ कषाय नाम मात्र को रह जाती है तब उस अवस्था को सूक्ष्मसांपराय कहते हैं और जब यह नाम मात्र की लोभ कषाय भी दब जाती है या क्षय हो जाती है, और कोई भी किसी प्रकार की कषाय नाम मात्र को भी उदय में नहीं रहती है तब उपशम करने वाला तो उपशान्त कषाय और क्षयकरने वाला क्षीण कषाय कहलाता है उपशान्त कषायवाले की कषाय तो अन्तर महूर्त के अंदर उभर आती हैं और वह अपनी अवस्था से गिर जाता है और क्षीण कषाय वाले को केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है,

केवल ज्ञानी जगत के जीवों को धर्म का उपदेश देने के वास्ते देश देश विहार करते हैं और उपदेश देते हैं, इत्यादिक कारणों से उन के शरीर में कुछ न कुछ क्रिया ज़रूर होती रहती है इस ही को योग कहते हैं और ऐसे केवली भगवान सयोग केवली कहलाते हैं, फिर जब देह छोड़ कर मोक्ष जाने को होते हैं तो कुछ बहुत थोड़ी देर के वास्ते सर्व ही प्रकार की शरीर की क्रिया बन्द हो जाती हैं उन को अयोग केवली कहते हैं, सम्यग्दर्शन धर्म की पहली अवस्था है उस से गिर कर जीव मिथ्याती होता है अर्थात जिस अवस्था में अनादिकाल से पड़ा हुआ था उस ही अस्वथा में जा गिरता है परन्तु सम्यग्दर्शन डांवां डोल हो कर जब तक मिथ्यात्व नहीं हो जाता है उस अवस्था को सासादन कहते हैं यह अवस्था बहुत थोड़ी देर रहती है, एक ऐसो अवस्था भी होती है जिस में साम्यक और मिथ्यात्व दोनों मिले हुवे होते हैं इसको सम्यक्त मिथ्यात्व अवस्था वामिश्र अवस्था कहते हैं, इस प्रकार मुक्ति प्राप्त होने से पहले जीव की १४ अवस्था होती हैं जो १४ गुणस्थान कहलाते हैं जो इस प्रकार हैं (१) मिथ्यात्व (२) सासादन (३) मिश्र (४) अविरत-सम्यकत्व (५) देशविरत (६) प्रमित्त महाव्रत (८) अपूर्व करण (९) अनिवृत्ति करण (१०) सूक्ष्मसांपराय (११) उपशान्त कषाय (१२) क्षीण कषाय (१३) सायोग केवली

(१४) अयोग केवली ॥

॥ नवां अध्याय ॥

जो जैसी करनी करता है उसको वैसा ही कर्मों का बंध होता है, अर्थात् वैसा ही विकार उसकी आत्मा में पैदा हो जाता है, जिसका फल उसको अवश्य उठाना पड़ता है, परन्तु किसी भी वस्तु में कोई किसी भी प्रकार का कोई विकार पैदा नहीं हो सक्ता है जबतक कि कोई भिन्न पदार्थ उसमें नहीं आमिलता है, इसही प्रकार जीव में भी विकार पैदा होने के वास्ते जीव से भिन्न कोई पदार्थ जीव में सम्मिलित होना चाहिये, वह पदार्थ सिवाय पुद्गल के और कोई भी नहीं हो सक्ता है, इसही के सूक्ष्म परमाणु जीव के साथ सम्मिलित होकर उसमें विकार पैदा करदेते हैं, जीवों के साथ पुद्गल परमाणुओं का यह सम्बंध अनादिकाल से चला आ रहा है, मन वचन काय की क्रिया से शरीर के अंदर स्थित आत्मा भी जो शरीर में सर्वांग प्रवेश किये हुवे होती है हिलती है, इस प्रकार आत्मा के हिलने को योग कहते हैं जिससे कर्मों की उत्पत्ति होती है; परन्तु जबतक वह क्रिया किसी प्रकार की कषाय के बिदून होती है तबतक उससे उत्पन्न हुवे कर्मों का अर्थात उस करनी का आत्मा के साथ ऐसा सम्बंध नहीं होता है जिससे उसका फल जीव आत्मा को भोगना पड़े, कर्मों का बंध तो तब ही होता है जबकि मन वचन काय

की क्रिया किसी प्रकार की कषाय के द्वारा की जाती है, मंद या तीव्र जैसी कषाय होती है उसही के अनुसार-कर्मों का अनुभाग (अनुभवन) अर्थात उसके फल की तीव्रता वा मंदता होती है, इसही प्रकार कषाय की तीव्रता वा मंदता के अनुसार ही कर्मों की स्थिति होती है, अर्थात अधिक समय तक वा कमती समय तक कर्मों का सम्बंध जीवात्मा के साथ रहता है, भावार्थ उतने समय तक उनका फल मिलता रहता है,कर्मों की स्थिति पूरी होने तक एक एक हिस्सा कर्म का एक एक समय में फल देकर बेकार होता रहता है इसही को कर्मों का उदय होना कहते हैंबेकार हो जाने को निर्जरा भी कहतेहैं,कर्म का जो हिस्सा अपने समय पर उदय होता है उस को सविपाक निर्जरा कहते हैं और जिसका उदय समय से पहले ही हो जाता है उसको अविपाक निर्जरा वा उदीरणा कहते हैं, जिस समय कर्म का कोई हिस्सा उदय होने को हो उसका उस समय होना रुक जाना इसको उपसमक कहते है, उपसम हुवा कर्म फिर किसी समय उदय में आता है, इसही प्रकार नवीन कर्मों के कारण पिछले किसी कर्म का अनुभाग वा स्थिति बढ़ जाना इसको उत्कर्षण कहते हैं और अनुभाग वा स्थिति कम हो जाने को अपकर्षण कहते हैं, इसही प्रकार नवीन कर्मों के कारण पिछले किसी कर्म का वा उसके किसी हिस्से का किसी दूसरे कर्म रूप हो जाना

इसको संक्रमण कहते हैं, इस प्रकार नवीन कर्मों के द्वारा पिछले कर्मों में अदल बदल और अलटन पलटन भी होती रहती है यहांतक कि इस समय के किसी महान पाप के कारण पिछले पुन्य कर्म भी पापरूप होजावें और इस समय के महान पुन्य कर्मों से पिछले पापकर्म भी पुन्यरूप होजावें,

कोई कोई कर्म किसी समय किसी कारण से इस प्रकार भी बंधते हैं जिनकी उदीरणा न हो सके उनको उपशान्त बंध कहते हैं, जिनकी न उदीरणा होसके और न संक्रमण होसके उसको निद्धत कहते हैं, जिनकी उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण चारों ही न होसकें उसको निकांचित बंध कहते हैं, अच्छे कर्मों के करने से पिछले बुरे कर्म भी अच्छे होजाते हैं, उनका स्थित और अनुभाग भी बदल जाता है और बुरे कर्मों के करने से पिछले अच्छे कर्म भी बुरे हो जाते हैं इस सिद्धान्त से अच्छे कर्मों के करने और बुरे कर्मों से बचने की बहुत ज्यादा कोशिश रखनी चाहिये, अच्छे २ निमित्तों को मिलाने और खोटे २ निमित्तों से बचने की सावधानी रखनी चाहिये, विश खाने से, विष-धर जीव के काटने से, खून के क्षय होने से, भारी भय से, शस्त्रघात से, अति संक्लेश अर्थात महादुख के होने से, श्वासो-च्छ्वास के रुकजाने से आहार के न करने से, इत्यादिक कारणों से आयु कर्म की स्थिति पूर्ण होने से पहले भी मरण

हो जाता है, समय से पहले ही आयु कर्म की उदीरणा होकर निर्जरा हो जाती है, इसही प्रकार अन्य भी अनेक प्रकार के निमित्त मिलने से कर्मों की उदीरणा होकर अनेक प्रकार के सुख दुख उपस्थित हो जाते हैं,

संसार की सारी वस्तु किसी जीव के कर्मों के आधीन नहीं होसक्ती हैं वह तो अपने २ स्वभाव के अनुसार ही प्रवर्तती रहती हैं, इसही प्रकार संसार के अनन्तानन्त जीव प्रवर्तते हैं, इस प्रकार एकही संसार में अनन्तानन्त वस्तुवों के प्रवर्तने से वह एक दूसरे से टक्कर खाते हैं और एक दूसरे के निमित्त कारण बनते हैं, एक दूसरे पर अक्रमण भी करते हैं उपकार भी करते हैं और नुक़सान भी करते हैं, इस से जीवों के कर्म समय से पहले उदय में आकर अर्थात उदी- रणा होकर समय से पहले भी सुख दुख देने लगजाते हैं, संसार के जीव अजीव पदार्थों की यह सब टक्करें निमित्त कारण कहलाती हैं जो जीवों के कर्मों के आधीन नहीं होती हैं, इस ही कारण जब कोई कर्म उदय में आवे यदि उस समय उस कर्म के अनुसार निमित्त कारण मौजूद नहो जिसके द्वारा वह कर्म अपना पूरा फल देसके तो निमित्त कारण के न मिलने के कारण उस कर्म को बिना फल दिये ही क्षय हो जाना पड़ैगा, इस वास्ते उत्तम२ निमित्त कारणों को मिलाते रहना और खोटे २ निमित्तों के न मिलने की

कोशिश रखना ज़रूरी है, अर्थात भाग्य वा कर्मों केही भरोसे नहीं रहना चाहिये किन्तु उद्यम भी करते रहना चाहिये, उद्यम से ही कर्म बनते हैं और उद्यम से ही कर्म बदले भी जासक्ते हैं, दवाये भी जासक्ते हैं और क्षय भी किये जासक्ते हैं उद्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, यद्यपि संसार के जीव अपनें कर्मों के कारण शक्ति हीन हो रहे हैं, तो भी उद्यम से वह अपने कर्मों पर विजय पा कर अपनी पूर्ण शक्ति प्राप्त कर सक्ते है मोक्ष की प्राप्ति कर्मों के उदय से नहीं होती है किन्तु कर्मों के क्षय कर देने से ही होती है, इस कारण जीव को अपने कर्मों के ही भरो से नहीं रहना चाहिये किन्तु कर्मों के विरुद्ध भी उद्यम करना चाहिये, कर्मों के कारण जीव का सर्वस्व नाश नहीं हो जाता है और न किसी वस्तु का कभी सर्वस्व नाश हो ही सक्ताहै किन्तु दूसरी वस्तुओं के कारण तरह तरह का विकार ज़रूर पैदा हो सक्ता है, इस ही कारण यद्यपि संसारी जीव अपने कर्मों के कारण विकारी हो रहे हैं परन्तु जीव का अस्तित्व बराबर बना हुवा है वह नाश नहीं हो गया है, इस कारण जीव को अपना कुछ जीवत्व भी ज़रूर दिखाना चाहिये बिल्कुल ही कर्मों के आधीन नहीं हो बैठना चाहिये, यह कर्म भी तो उस ही के किये हुवे हैं और उस ही की कोशिश से क्षय भी होसक्ते हैं कमज़ोर भी किये जासक्ते हैं, और बदले भी जासक्ते

हैं और दबाये भी जासक्ते हैं, होने को सबकुछ हो सक्ता है पर उद्यम करना ज़रूरी है,

कर्मों के फल की अपेक्षा मोटे रूप आठ भेद किये गये हैं. (१) दर्शनावरण जो जीव के सामान्य गुण को ढके (२) ज्ञानावरण जो जीव के विशेष गुण को ढके (३) मोहनीय जो रागद्वेष रूप मोह वा क्रोध मान माया लोभ आदिक कषाय उपजावे और जीव के सच्चे श्रद्धान में बाधा डाले, अपनी असलियत की पहचान न होने देवे (४) अन्तराय जो जीव की शक्ति को नफुरनेदे, अन्तराय डाले (५) आयु जिसके कारण कुछ समय तक एक पर्याय में रहना होता है (६) गोत्र जो ऊंच नींच अवस्था प्राप्त करावे (७) वेदनी जो सांसारीक सुख दुख का सामान जुटावे (८) नाम जो जीव को उसकी पर्याय के अनुसार शरीर प्राप्त करावे, यह आठ कर्मों के मूल भेद कहलाते हैं, फिर दर्शनावरणी के ८ भेद ज्ञानावरणी के ५ मोहनीय के २८ अन्तराय के ५ आयु के ४ गोत्र के २ वेदनीय के २ और नाम के ९३ भेद करके कुल १४८ भेद किये गये हैं यह १४८ कर्म प्रकृति कहलाती हैं, यह मोटे भेद हैं वैसे तो लाखों करोड़ों और असंख्यात भेद हो सक्ते हैं, एक मूल कर्म पलट कर दूसरे कर्म रूप नहीं हो सक्ता है किन्तु एक ही मूल कर्म की प्रकृतियां आपस में अलट पलट हो सक्ती हैं इसही को संक्रमण कहते हैं, जब हम

किसी वस्तु को देखते हैं तो एकदम निगाह पड़ते ही यह मालूम नहीं करलेते हैं कि यह अमुक वस्तु है किन्तु सबसे पहले तो यह ही जानते हैं कि कुछ है,,काली है पीली है लम्बी है चौड़ी है छोटी है मोटी है और क्या है इत्यादिक एकदम तो कुछ भी नहीं जान सक्ते हैं इस ही सामान्यरूप जानने को दर्शन कहते हैं, फिर जब दूसरे क्षण में कुछ ग़ौर के बाद उस वस्तु का आकार आदि जानलेते हैं तब उसको विशेष ज्ञान कहते हैं यह ही ज्ञान कहलाता है, दर्शन को ढकनेवाला दर्शनावरणी कर्म है और ज्ञान को ढकनेवाला ज्ञानावरणी कर्म है,

अब हम मोटे रूप यह बताते हैं कि किन २ क्रियाओं से कौन कौन कर्म पैदा होता है, ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के पैदा होने के कारण प्रदोष निन्हव मात्सर्य अंतराय आसादन और उपघात हैं, प्रदोष अर्थात सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले से डाह रखना, उसकी सराहना न करना, मचला बन जाना उसके उपदेश के अनुसार न चलना जिससे वह उपदेश लोगों में मान्य न होने पावे, निन्हन अर्थात किसी कारण से अपने ज्ञान को छिपाना, दूसरे को न बताना, यह कहदेना कि मैं नहीं जानता, मात्सर्य अर्थात घमंड के कारण जो कुछ जानता है दूसरे को न बताना, अन्तराय अर्थात ज्ञान के प्रचार में विघ्न डालना, आसादना अर्थात ज्ञान को प्रगट

नहीं होने देना, दूसरों को भी प्रकाश करने से मना करना, उपघात अर्थात सच्चे ज्ञान को दूषण लगाना, जो ज्ञान को फैलावे उस से प्रतिकूल रहना, अपने ज्ञान का गर्व करना, झूठा उपदेश देना, विद्वानों की अवज्ञा करना, वृथा बकवाद करना जिस तरह लौकिक प्रयोजन सधै तैसे ही ज्ञान अभ्यास करना, कोई शास्त्र देखना चाहे उस को न दिखाना। वेदनीय कर्म के दो भेद हैं एक साता जो सुखदे दूसरी असाता जो दुखदे, दुख शोक ताप आक्रंदन वध और परिदेवन यह असाताकर्म के पैदा होने के कारण हैं, दुख अर्थात अपने को वा दूसरे को पीड़ा पहुंचाना, शोक अर्थात निराश होकर दुख मानना, रंजकरना ताप अर्थात हृदय में तपना पश्चातापकरना आक्रंदन अर्थात रोना चिल्लाना, वध अर्थात किसी के प्राणों का घात करना, मारना छेतना, परिदेवन अर्थात विलक २ कर इस प्रकार रोना जिस से सुनने वालों कों भी दुख होंने लगे, दूसरे को पाप में लगाना, दूसरे को बदनाम करना डाह कर के दूसरे की बुराई करना चुगली खाना, दुखित पर करुणा न करना, दूसरे को पीड़ा उपजाना, मारना छेदना त्रास पहुंचाना तिरस्कार करना बांधना, रोकना, बसमेंरखना, स्वच्छंद न रहने देना, बाहना, बोझलादना, अपनी प्रशंसा और दूसरे की निन्दा करना, बहुत आरंभ करना, बहुत परिग्रह चाहना, क्रूरस्वभावरखना पाप की आजीविका करना

पाप परिणाम रखना, पापियों से मेलजोल रखना, यह सब असातावेदनी कर्म के पैदा होने के कारण हैं ॥ सब जीवों पर दया करना, व्रतियों को भक्ति से और सर्व साधारण को दया करके दान देना, सरागसंयम अर्थात श्रावक के व्रत धारण करना, क्षमावान होना लोभ कम करना, अरहंत आदिक की पूजा यह सब साता वेदनी कर्म के पैदा होने के कारण हैं,

तीव्र कषायरूप परिणाम होने से चारित्र मोहनी कर्म पैदा होते हैं, सत्य धर्म की हंसी उड़ाने दीन जनों की हंसी उड़ाने, बहुत बकने, निरर्थक हंसने आदि से हास्य कषाय कर्म पैदा होता है, क्रीड़ा अर्थात खेलकूद में लगे रहने और व्रत शील में अरुचि रखने से रति कषाय कर्म पैदा होता है, दूसरे को अरति उपजाना, दूसरे की दिल्लगी का नाश करना, पाप का स्वभाव रखना, पापियों का संसर्ग रखना इत्यादि से अरति कषाय कर्म पैदा होता है, अपने को रंज उपजाना, दूसरे के रंज में हर्ष मानना इत्यादि से शोक कषाय कर्म पैदा होता है, भले आचार और भली क्रियाओं से नफ़रत, पर की बुराई करने की का स्वभाव इत्यादि से जुगुप्सा कषाय कर्म पैदा होता है, झूठ बोलने का स्वभाव, पर को ठगने में तत्पर, पर के दोष ढूंढने की आदत, अधिक राग, काम कुतूहल आदि के परिणाम इत्यादि से स्त्री वेद कर्म पैदा होता है, थोड़ी क्रोध आदि कषाय, अपनी ही स्त्री

में संतोष इत्यादि से पुरुषवेद कर्म पैदा होता है, बहुत कषायरूप परिणाम, लिंग आदि काटना, परस्त्री में आसक्ति इत्यादि से नपुंसकवेद कर्म पैदा होता है,

बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह से नरक आयु कर्म पैदा होता है, पांचों पापों में क्रूरता रखना, पर धन हरना, विषय की अतिलोलुपता, रौद्रध्यान सहित मरना, यह भी नरक आयु के कारण हैं, मिथ्यात्व सहित आचार, तीव्रमान कषाय, अति क्रोध, तीव्र लोभ, दया का न होना, दूसरों को दुख देने का स्वभाव, वध बंधन करने का अभिप्राय, प्राणी घात के परिणाम, असत्य भाषण, कुशील, चोरी करने की नीयत, दृढ़ बैर, पर के उपकार से विमुख परिणाम, मिथ्या मत का प्रचार आदि भी नरक आयु के कारण हैं, मायाचार से तिर्यंच आयु पैदा होती है, नरक आयु के पैदा होने के जो कारण हैं उनसे उलटे कारण मनुष्य आयु पैदा करते हैं, विना युक्त स्वभाव, प्रकृति से ही भद्र परिणाम, मन वचन काय की सरलता, हीन कषाय मरते समय संक्लेष परिणामों का न होना, पाप पुन्य रूप मिश्र मध्यम परिणाम, यह सब मनुष्य आयु के कारण हैं, स्वभाव से ही कोमल परिणामी होना, घमंड का न होना, संयमासंयम, यह देव आयु के कारण हैं, अकस्मात कोई दुख आजाय उस को सहन करना, संक्लेश परिणाम न करना यह भी देव आयु

के कारण हैं, मित्र बनाना, देव गुरू शास्त्र की भक्ति, सत्य धर्म का आश्रय लेना, धर्म प्रभावना करना, उपवास, जल की रेखा समान क्रोध, सम्यक्त्व यह सब देव आयु के कारण हैं, सम्यक्त्वी देव नारकी मरकर मनुष्य ही होते हैं, मनुष्य और तिर्यंच के ही देव आयु बंधती है, मन वचन काय के योगों की वक्रता अर्थात मायाचारी पना, दूसरे को ग़लत रास्ते पर लगाना, इनसे अशुभ नाम कर्म पैदा होता है, मिथ्यात्व, डाह, चुग़ली, चंचल चित्त, तोलने मापने के माप कमती बढ़ती रखना, पर की निंदा, अपनी प्रशंसा, खरी चीज़ के बदले खोटी या बनावटी देना, झूठी गवाही, पर के अंग बिगाड़ना, झूठ, चोरी, बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह, पर के ठगने को उज्वल भेष धारण करना, घमंड करना, कठोर वचन बोलना, वाही तवाही बकना, पर के वस करने को अपना सौभाग्य दिखाना, परको कौतूहल उपजाना सुंदर अलंकार पहनना, मंदिर की वस्तु चुराना, पर को वृथा बहकाय रखना, उपहास करना, तीव्र कषाय, पाप कर्म की आजीविका यह सब अशुभ नाम कर्म पैदा करते हैं. इससे उलटे कार्य शुभ नाम कर्म पैदा करते हैं, पर की निंदा अपनी प्रशंसा, पर के गुण निषेध करने अपने औगुण भी गुण बताने, अपनी जाति आदि का घमंड करना, पर की निंदा से हर्ष मानना, पर की बुराई करने का स्वभाव, धर्मात्माओं की निंदा करनी,

पर का यश न सुहावना, यह सब नीच गोत्र के कारण हैं, इसके विपरीत उच्च गोत्र के कारण हैं, विघ्न करने से अन्तराय कर्म पैदा होता है,

समरंभ अर्थात उद्यमरूप परिणाम होना किसी काम का इरादा करना, समारंभ अर्थात किसी काम के करने के लिये सामान इकट्ठा करना, आरंभ अर्थात उस काम को करने लगना, कृत अर्थात खुद करना कारित अर्थात दूसरे से कराना, अनुमोदना अर्थात दूसरा करै तो भला जानना, मन में खुश होना, मन वचन काय इन सबही रीति से कर्म पैदा होते हैं, फल नीयत का ही होता है अर्थात जैसी नीयत होती है वैसा फल मिलता है, वैसा ही अनुभाग और स्थिति कर्मों की होती है, इस वास्ते सदा अपनी नीयत को साफ़ और शुद्ध रखना चाहिये, कभी किसी की किसी भी प्रकार की बुराई करने का वा नुक़सान पहुंचाने का अभिप्राय नहीं होना चाहिये किन्तु सब की भलाई का ही अभिप्राय रहना चाहिये ॥

इस प्रकार प्रथमभाग समाप्त हुवा

जैनधर्म प्रवेशिका का शुद्धिपत्र।

पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
११	१२	नौं	नो
१२	३	नौं	नो
१६	५	तरप	तड़प
२७	५	मोटे पांच	मोटे रूप पांच
३०	८	खुदामद्	खुशामद्
३३	७	अभिनंदन सुमति	अभिनंदन, सुमति
३३	१८	होती हैं	होती रहें
३६	८	जासक्तो	जासक्ता
४०	१३	आसानी जो	आसानी से जो
४४	१८	जान,	जान कर
४४	१६	तब ज्ञान	तब उस ज्ञान
४५	८	हीजो	ही है जो
४५	११	चलता	चलना
४७	८	उस	उसे
४८	१६	मानने भी	मानने में भी
४६	११	भ्रष्टाचारीनी	भ्रष्टाचारी
४६	१८	शेका	शंका
५१	२०	भी नहीं	भी सामने नहीं
५७	१३	मसत्न	ममत्व
५६	१३	स्त्री साथ	स्त्री के साथ

पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
५९	२०	'धम तो	धम में तो
६२	५	पोने	पीने
६३	१३	सानवी	सातवीं
६५	१२	ऐसे	ऐसा
६६	४	धीख	भीख
६६	१९	चिन्वन	चिन्तवन
७०	२	सिदि	सिद्धि
७४	१	में	य
७५	४	की	को
७५	१४	साम्यक	सम्यक्त
७५	१९	प्रमित्त	प्रमत्त
७७	१३	उदीणा	उदीर्णा
७७	१५	समय होना	समय उदय होना
७७	१५	उपसमक	उपसम
७९	१०	अक्रमण	आक्रमण
८०	६	उयम	उद्यम
८२	१४	उपधात	उपघात
८५	१५	विना	दया
८६	१	मित्र बनाना	मैत्री भावना
८६	४	सम्यत्वी	सम्यक्ती

वन्दे जिनवरम्

जैन मित्रमंडल दरीवा कलां देहली के उद्देश्य और नियम।

मुख्योद्देश्य-जैनधर्म का प्रचार करना इस सभा का मुख्य उद्देश्य होगा।

१—इस संस्था का नाम जैन मित्र मंडल होगा।

२—यह सभा १ मास में एक वार अवश्य हुआ करेगी विशेष आवश्यकता होने पर बीच में भी हो सकेगी।

३—इस सभा के निम्नलिखित ९ पदाधिकारी होंगे सभापति, उप-सभापति, मन्त्री, संयुक्तमंत्री सहायकमन्त्री, कोषाध्यक्ष, हिसाब निरीक्षक।

(सभापति १, उपसभापति २, मन्त्री १, संयुक्तमंत्री १, सहायकमन्त्री १, कोषाध्यक्ष १, हिसाब निरीक्षक २)

४—सभा का उचित प्रवन्ध करने के लिये ३१ सभासदों की एक कार्यकारिणी कमेटी होगी जिसमें जनरल मीटिंग के पदाधिकारी अवश्य होंगे। इसकाकोरम ७ का होगा।

५—जनरल सभा का कार्य स्थानीय सभासदों में से ३१ सभासद होने पर प्रारम्भ होगा अर्थात जनरल मीटिंग का कोरम ३१का होगा

६—सभा के नियत समय से १ घटेतक भी २ वार कोरम न होने पर तीसरी वार विना कोरम के कार्य किया हुआ स्वीकृत होगा।

७—सभा को प्रत्येक कार्य वहुसम्मति से हुआ करेगा सभापति की सम्मति समान होने पर दोके बराबर समझी जावेगी।

८—इस सभा के सभासद दो प्रकार के होंगे एक स्थाई दूसरे साधारण

(क) स्थाई सभासद वह होंगे जो एक मुस्त ५१) प्रदान करें और जन्म पर्यन्त सभासाद रहेंगे।

(ख) साधारण सभासद वह होवेंगे जो कम से कम चार आने माहवार देंगे।

नोट—कार्यकारिणी कमेटी की आज्ञानुसार विना फीस के भी सभासद हो सकेंगे।

९—इस सभा के सभासद १५ वर्ष से कम अवस्था वाले न हो सकेंगे।

१०—इस के सभासद ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और स्पर्श शूद्र हो सकेंगे।

११—इस सभा के सभासद कुचरित्री तथा किसी विशेष अवगुण में प्रसिद्ध सभासद न हो सकेंगे।

१२—सभासद सभासदी का प्रवेश पत्र भरने तथा कार्य कारिणी से स्वीकारता पत्र भेजने से समझे जावेंगे।

१३—सभा के पदाधिकारी व प्रबन्धकारिणी कमैटी का चुनाव वर्षांत पर हुआ करेगा लेकिन विशेष कारण होने पर बीच में भी बदले जा सकते हैं।

१४—इस सभा के प्रत्येक सभासद को प्रत्येक सभासद के सुख दुःख आदि प्रत्येक कार्यों में यथा शक्ति सम्मिलित होना चाहिए।

नोट—कार्य कारिणी कमेटी की आज्ञानुसार नियमों में परिवर्तन हो सकता है।

विशेष हाल जानने के लिए निम्न पतेपर पत्र व्यवहार करें

मन्त्री जैन मित्र मंडल दरीबा कलां देहली

—o—

※ जैनमित्र मण्डल देहली के प्रकाशित ट्रैक्ट ※

१	मिथ्यातमोध्वंसार्क	हिन्दी	मूल्य तीन पैसे
२	घोर अत्याचार और उसका फल	,,	,, डेढ़ आना
३	हितैषी भजन संग्रह प्रथम भाग	,,	,, ,,
४	देहली शास्त्रार्थ	,,	,, चार आने
५	जैनतीर्थङ्कर दर्पण चार्ट	,	,, एक आना
६	हितैषी गायन संग्रह चतुर्थ भाग	,,	,, डेढ़ आना
७	द्रव्य संग्रह	,,	,, दो आने
८	The Jains of India and Dr. H. S Gours Hindu Code	अंग्रेजी	,, डेढ़ आना
१०	Jainism and Dr. H. S. Gours Hindu Code	,,	,, डेढ़ आना
११	उपासनातत्त्व	हिन्दी	,, ,,
१२	अहिंसा	,,	,, एक आने
१३	जैन धर्म का महत्त्व	,,	,, ,,
१४	जैन धर्म व परमात्मा	उर्दू	,, दो आना
१५	मेरीभावना पंडितजुगलकिशोर	,,	,, एक पैसा
१६	रेशम के वस्त्र	हिन्दी	,, ,,
१७	मेरीभावना पंडितजुगल किशोर	उर्दू	सवा रुपया सैंकड़ा
१८	जैन कर्म फिलासफी	,,	,, एक आना
१९	सुख कहां है	,,	,, एक पैसा
२०	खुलासाएमज़हब	,,	,, दो पैसे
२१	ब्रह्मचर्य	,,	,, एक पैसा
२२	शाहरा निजात	,,	,, दो पैसा
२३	मोहजाल	,,	,, एक पैसा

२४	भगवानमहावीरकेजीवनकीझलक	,,	,,	तीन पैसे
२५	रत्नकरण्डश्रावकाचारपद्यानुवाद	हिन्दी	,,	दो आने
२६	सप्तव्यसन	उर्दू	,,	दो पैसे
२७	Pure Thoughtsअर्थात्सामायिकपाठसंस्कृत	अंग्रेजी		-)
२८	मेरीभावना लाला झुन्नुलालजी	उर्दू	,,	विना मूल्य
२९	क्याईश्वरखालिकहै व भजन कर्ताखण्डन		,,	एक पैसा
३०	ज्ञानसूर्योदय द्वितीय भाग	उर्दू	मूल्य	एक आना
३१	कलामे पैंका कविता	,,		विना मूल्य
३२	मज़मूआ दिलपजीर (कविता	,,	मूल्य	एक पैसा
३३	रहनुमा अर्थात् जैन धर्म दर्पण	,,	,,	दो पैसे
३४	जैन वैराग्यशतक कविता	,,	,,	डेढ़ आना
३५	आरज़ूएखैरवाद ,,	,,	,,	एक पैसा
३६	गुलजारेतख्युलअर्थातभक्तामर स्तोत्रकविता	,,		दो पैसे
३७	Jain Conceptions	अंग्रेजी	,,	दो आने
३८	जिनेन्द्रमतदर्पण प्रथमभाग	हिन्दी	,,	डेढ़ आना
३९	नायाब गोहर	उर्दू	,,	दो पैसे
४०	What is Jainism	अंग्रेजी	,,	,,
४१	जैनधर्मकीअज़मतवजैनधर्मवाले-किसकी परस्तिश करते हैं	उर्दू	,,	एक आना
४२	जैनधर्म प्रवेशिका प्रथमभाग	हिन्दी	,,	तीन आने
४३	Lord Mahavir	अंग्रेजी	,,	तीन आने

मिलनेका पता–

जैन मित्र मण्डल कार्यालय ।

दरीबां कलां देहली ॥

❋ जैन मित्र मण्डल का संक्षिप्त परिचय ❋

यह बात तो आपको भली प्रकार विदित है कि उक्त मण्डल सन् १९१५ से देहली में स्थापित है और जैन धर्म व जैन समाज की हर प्रकार से भली भाँति सेवा कर रहा है और अपने मुख्य उद्देश्यानुसार जैन दर्शन के प्रचारार्थ छोटे २ सुलभ भाषा में हिन्दी उर्दू अंग्रेजी में इस समय तक ४३ पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है जिनकी संख्या डेढ़ लाख से अधिक पहुंच चुकी है इन पुस्तकों से जैन अजैन भाइयोंने जिस कदर लाभ उठाया है उस के बताने की मुझे आवश्यकता नहीं। समाज इस से भली प्रकार परिचितहै और आए दिन जैन व जैनेतर पत्रोंमें समालोचनाएं छपती रहती हैं। मण्डल ने इन पुस्तकों से केवल भारत वर्ष में ही नहीं बल्कि देश देशान्तरों (योरोप, जरमनी, इटली आदि) में भी हजारों पुस्तकें वितीर्ण कर जैन दर्शन की महत्वता को प्रगट किया है अत एव आपसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि यदि आपके हृदय में जैन धर्मका प्रेम है और श्री महावीर स्वामी की वाणी को भूमंडलमें प्रचार कर सार्वजनिक धर्म बनानेकी अभिलाषा है तो तनमन धन से इस मण्डल की सहायता करें। और यदि इस समय तक आप मण्डल के सभासदनहुए हो तो तुरन्त ही प्रवेश पत्र मंगवा कर सभासद बनने की कृपा करें और अपने मित्रों से इस के लिए प्रेरणा करें यही मेरी प्रार्थना है॥

देहली दीपावलि वीर निर्वाण संवत् २४५२	मंत्री जैन मित्र मण्डल